संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

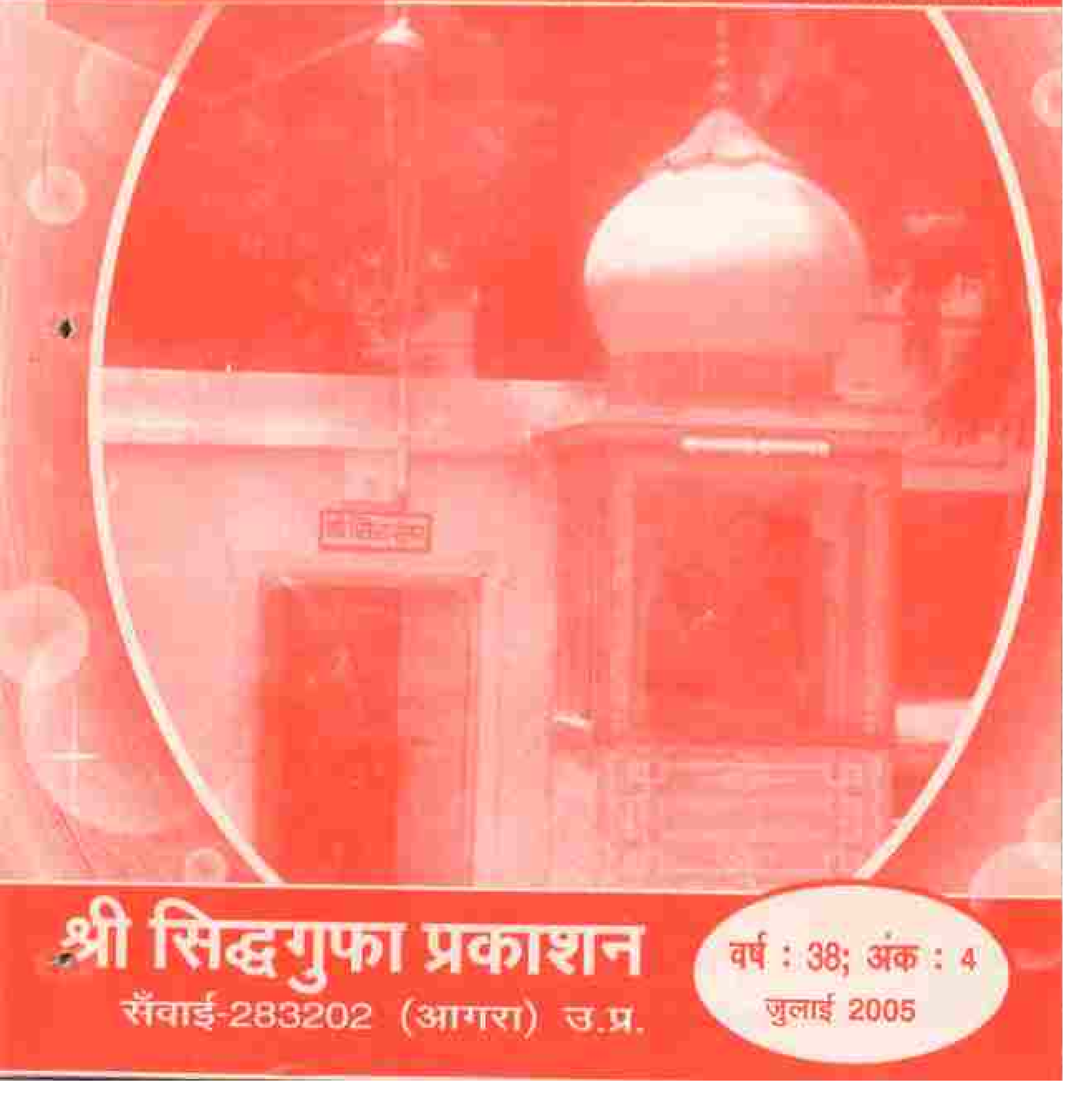

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 4
जुलाई 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- वितर्क और विचारानुगत समाधि (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 8
- मेरे सद्गुरुदेव —डा० विजय सिंह 11
- दिव्यांश को जीवनदान — अवनीश भटनागर 14
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति — कु० रुक्मिणी वर्मा 19
- जीव का शिव से मिलन — राजेश कुमार सिंह 23
- ईश्वरीय प्रेम का स्वरूप — रचना शर्मा 26
- श्री जगरनाथ परिवार की सहायता — केशव देव उपाध्याय 30
- सहारनपुर में गुरुदेव का वेदी विराजमान समारोह — अवनीश भटनागर 35
- कर्मयोग — कृष्ण कुमार पाण्डेय 38

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38
अंक 4

जुलाई
2005

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

स्तुति

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।।

(श्रीमद् भागवत् १०/१०/३८)

अर्थात्

भगवन् ! मेरी वाणी आपके गुण कीर्तन में लगी रहे। मेरे कान आपकी लीलाकथन सुनने में संलग्न रहें। मेरे हाथ आपकी सेवा के कार्य में और मन आपके चरणों के चिन्तन में तत्पर रहे। मेरा मस्तक आपके निवासभूत जगत को नमस्कार करने के लिए झुका रहे और मेरी आँखें आपके स्वरूपभूत संतजनों के दर्शन में निरत रहें।

अमृतकण

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।।

(गीता ७/३)

प्रयत्नशील हजारों पुरुषों में से कोई एक पुरुष ही योग की सिद्धि (यथार्थ मार्ग) को प्राप्त किया करता है। और उस यथार्थगामी हजारों सिद्धों में से कोई एक ही मेरे तत्व को जाना करता है।

❊ ❊ ❊

तावन्निशीथवेताला वक्षान्ति हृदि वासनाः।
एकतत्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।।

(योगवासिष्ठ)

जब तक एक तत्व के दृढ़ अभ्यास से मन को पूर्ण रूप से जीत नहीं लिया जाता तब तक अर्द्धरात्रि में नृत्य करने वाले वेतालों के समान वासनाऐं हृदय में नृत्य करती रहती है।

❊ ❊ ❊

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति।।

(कूर्मपुराण)

योगरूप अग्नि शीघ्र निखिल पापपञ्जरपुंज को दग्ध कर देता है। उस पाप के दग्ध होने से प्रतिबन्ध रहित ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से निर्वाणसंज्ञक मोक्ष प्राप्त होता है।

❊ ❊ ❊

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये।।

(भगवान शंकर)

कोई मनुष्य चाहे जितना ज्ञानी, विरक्त, धर्मिष्ठ और जितेन्द्रिय क्यों न हो पर वह बिना योग के मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता।

❊ ❊ ❊

☐ विशेष लेख

वितर्क और विचारानुगत समाधि

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ध्यान योग के अभ्यासी को अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। हमारा एक गृहस्थी बच्चा काश्मीर की यात्रा पर श्रीनगर गया हुआ था। वहाँ कोई महात्मा मिल गये। वह अमरनाथ जा रहा था। हमारे उस गृहस्थी बच्चे ने उस महात्मा से कहा–महाराज ! आपको तो ब्रह्मराक्षस लगा हुआ है। महात्मा जी ने कहा– हाँ, मुझे ब्रह्मराक्षस तो लगा हुआ है। उस महात्मा ने गायत्री के कई पुरश्चरण किये हुये थे। किन्तु फिर भी ब्रह्मराक्षस से पीछा नहीं छुड़ा पा रहा था। महात्मा जी ने कहा तुमने जब यह जान लिया है कि मुझे ब्रह्मराक्षस है तो कृपया इससे छुड़ा दीजिये। उसे बच्चे ने कहा–'जब तक आप अमरनाथ से वापिस नहीं आ जाते जब तक मैं इसे रोक लेता हूँ।' इतना काम उसने कर दिया। यह हमारे एक साधारण. गृहस्थी बच्चे ने कर दिखाया। अस्तु।

मैंने तुम्हें सम्प्रज्ञात समाधि के विषयों में समझाया था संक्षेप में फिर बतलाता हूँ। ध्यान करने वाले को जब यह अनुभव होता रहे शिवोऽहम् शिवकेवलोऽहम् कृष्णोऽहम्। उसे इस बात का बोध ही न रहे कि मैं रामदत्त, देवदत्त या चन्द्रदत्त नामक कोई व्यक्ति हूँ। यदि ध्यान करने वाले को निरन्तर यह भासित होता रहे, हमेशा यह वृत्ति बनी रहे कि मैं शिव हूँ, राम हूँ तो इसका नाम है– सम्प्रज्ञात समाधि।'

तदेवार्थमात्रनिर्भासम् स्वरूपशून्यमिव समाधि'।

वही ध्येय– जब अर्थमात्र से भासित होता रहे अपना आपा भी खत्म जैसा हो जाये, उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। एक साधक देखता है–शिवोऽहम् रामोऽहम् यह कौन देखता है? ऐसा देखता है ध्यान करने वाला रामदत्त, चन्द्रदत्त आदि। वह यह भूल जाता है कि मैं रामदत्त, चन्द्रदत्त हूँ। उसे केवल यही याद रहता है शिवोऽहम्। मैं शिव हूँ, कृष्ण हूँ। वह भगवान शिव की आकृति में लीन हो जाता है ध्यान के प्रभाव से उसका मन इष्ट के मन में मिल जाता है। बुद्धि इष्ट की बुद्धि में मिल जाती है। उस समय वह शिवरूप हो जाता है यही सम्प्रज्ञात है। उसे आभास तो होता रहता है लेकिन शिव की आकृति का ही। इसलिए वह मानता है शिव हूँ, कृष्ण हूँ आदि–आदि। दीखना या अनुभव होना बोध होते रहना सम्प्रज्ञात समाधि का विषय है। योग दर्शन बतलाता है **'वीत राग विषयंवा चित्तम्'**। जो वीतरागी पुरुषों का ध्यान करते हैं वे तदाकार हो जाते हैं। उनके अर्थात् इष्ट के आकार की वृत्ति को तदाकार वृत्ति कहते हैं। इस समय हमारी वृत्ति तदाकार वृत्ति है मैं अपनी शक्ल को जान रहा हूँ मैं रामदत्त, चन्द्रदत्त हूँ

चन्द्रमोहन हूँ इत्यादि। तदाकार में बराबर इष्ट की आकृति में लीन हो जाते हैं। इसका अभ्यास निरन्तर बढ़ता रहे तो कालान्तर में वही होगा जो शिव के साथ होता है, हर हरकत जो उनके लिए (शिव) की जाती है। कोई जैसे भगवान शिव पर जल चढ़ा रहा है कोई पूजा कर रहा है योगी अनुभव करेगा मुझ पर जल चढ़ाया जा रहा है। मेरी पूजा की जा रही है इत्यादि इत्यादि। बाद में भगवान शिव जिस निर्बीज समाधि में रहते हैं योगी भी उसी समाधि को प्राप्त हो जायेगा। मैं शिव हूँ उसका यह ज्ञान भी समाप्त हो जायेगा। इसके बाद उसकी स्थिति **'तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्'** वाली हो जायेगी। यदि कोई पूछे कि निर्बीज समाधि में आत्मा की स्थिति कहाँ होती है तो इसका उत्तर है। **'चितिशक्ति यथा कैवल्ये'**। कैवल्य में चितशक्ति कैसे हुआ करती है ? यह किसी ने बताया ही नहीं है क्यों कि वहाँ न मन पहुँचता है न बुद्धि पहुँचती है। चित्त अहंकार वहाँ कोई नहीं पहुँचता असम्प्रज्ञात में नाम रूप सब खत्म हो जाते हैं। निर्बीज में योगी अपने स्वरूप में आ जाता है। उसके लिये तब वही बात लागू होती है। -

'यत्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूषि पश्यन्ति' जो आँखों से नहीं देखा जा सकता, जिसके तेज से आँखों को देखने की ताकत मिलती है। **यन्मनसा न मनुते येन आहुर्मनोमतम्** जिस का मन से मनन नहीं किया जा सकता मन जिसकी ताकत से मनन करने वाला होता है–वही ब्रह्म है। इस प्रकार मैंने संक्षेप में तुम्हें सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात का भेद बता दिया है। अब तुम्हें सम्प्रज्ञात समाधि के अवान्तर चार भेद बताता हूँ। सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेदों में प्रथम है **वितर्कानुगत समाधि**। **'वितर्कः चित्तस्यालम्बने स्थूला भोगः'** वितर्कानुगत समाधि में चित्त के एकाग्रता का लक्ष्य स्थूल पदार्थ होते हैं। लेकिन इस बात को याद रखो समाधि अन्तर्मुखी होगी। आभ्यन्तर धारणा, आभ्यन्तर ध्यान तथा अभ्यान्तर समाधि होगी बाहर नहीं बनेगी। भीतर से फिर बाहर बनेगी यह बात अलग है। वितर्कानुगत समाधि के लिये पतंजलि देव कहते हैं–**चित्तस्यालम्बने स्थूलाभोगः'**।

किस विषय को लक्ष्य बनायेगा यह तो गुरुदेव ही बतायेंगे साधक को। गुरुदेव ही उपदेश करेंगे कि कहाँ पर और किस का ध्यान करना है। इसलिए स्थूल विषय के चिन्तन को वितर्कानुगत समाधि कहते हैं। स्थूल विषय क्या है ? यह पहाड़ स्थूल विषय हैं, नदियाँ स्थूल विषय हैं। अग्नि जल रही है। आवाज सुनाई दे रही है। यह स्थूल विषय हैं। जब योगी वितर्कानुगत समाधि में होता है, तो उसे अग्नि जलती हुई दिखाई देती है। नदी नाले बड़े–बड़े पहाड़ दिखाई देते हैं। पंचभूतों से बनी स्थूल चीजें दिखाई देंगी। कई–कई साधक ध्यान में कुछ न कुछ देखते रहना ही उत्कृष्ट मानते हैं। इसलिए वे चाहते हैं पहाड़ देखें, नदी नाले समुद्र देखें भगवान राम, कृष्ण आदि के रूप देखें यदि यह स्थिति हटती है तो वह मानते हैं कि हमारा ध्यान लगना बन्द हो गया है। किन्तु उन्हें यह याद रखना चाहिए कि ये मोटे नजारे हैं–**वितर्कः चित्तस्यस्यालम्बने स्थूला भोगः'** इसे ही सवितर्क समाधि कहते हैं। निर्वितर्क में स्थूल दृश्य तो दिखाई नहीं देंगे किन्तु स्थूलों के सूक्ष्म आभोग दिखाई देंगे। स्थूल भूतों के अन्तरंग भाव हैं उनका अनुभव होगा जैसे पृथ्वी है सवितर्क स्थूल पृथ्वी दिखाई देगी; किन्तु निर्वितर्क में सूक्ष्म

पृथ्वी का आभास होगा, उसी में मन लय होगा।

सूक्ष्म पृथ्वी वह है जो इसकी सत्ता है। **'तत्र गन्धवती पृथ्वी'** के अनुसार पृथ्वी का बीज है। निर्वितर्क समाधि में योगी को पंच महाभूतों की तन्मात्राओं का साक्षात्कार होता है मायने सूक्ष्म पृथ्वी, सूक्ष्म जल, सूक्ष्म वायु आदि–आदि। अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का साक्षात्कार होगा जो महाभूतों के रूप की अपेक्षा सूक्ष्म विषय हैं। न गन्ध का कोई रूप है, न रस का कोई रूप है, न रूप का कोई रूप है न शब्द का कोई रूप है। तात्पर्य यह है कि जिस समय योगी की तन्मात्राओं में समाधि होती है तो वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इसमें चित्त का विषय स्थूल न होकर सूक्ष्म हो जाता है। इस प्रकार योगी वितर्कानुगत समाधि में पृथ्वी की दिव्य वस्तुओं को देखता है। पृथ्वी में रहने वाले सिद्ध पुरुषों का तथा दिव्य आत्माओं का दर्शन होता है। इसका अभ्यास बढ़ाते–बढ़ाते योगी विचारानुगत की ओर बढ़ता है। विचारानुगत समाधि है– **'सूक्ष्मो विचारः'**।

विचारानुगत समाधि में तन्मात्राओं तथा तन्मात्राओं से युक्त लोकों को देखता है। सवितर्क समाधि में भूमण्डल को देखा किन्तु सविचार में तन्मात्र लोगों को देखेगा, स्वर्ग एवं लोक लोकान्तर को देखेगा। इस प्रकार से शब्द–स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का साक्षात्कार इस समाधि में करता है विचारानुगत समाधि में देवलोक, साकेत लोक आदि–आदि दिखाई देते हैं। जिसके अन्दर स्थूल महाभूतों का अभाव रहता है। पृथ्वी, जल आदि स्थूल रूप में न होकर सूक्ष्म रूप में होते हैं वहाँ दिव्य तनुधारी देवता रहा करते हैं। देवता अजर अमर होते हैं। इस पृथ्वी लोक में हमारे शरीर में पृथ्वी का भाग कम हो जाये तो हम बीमार हो जाते हैं। उसी प्रकार से जल का एवं अग्नि का भाग कम हो जाये तो बीमार, वायु काम न करे तो मनुष्य मर ही जाता है। यहाँ पंच महाभूत हमारे शरीर में स्थूल रूप से हैं। देवलोकों में पंचमहाभूत स्थूल में न होकर सूक्ष्म रूप में है। उन सूक्ष्म तन्मात्राओं में जो मन लीन होता है उसको विचारानुगतन समाधि कहते हैं। साधक को चाहिये कि वह उकताये नहीं, धैर्य से साधना करता रहे। हमें पतंजलि देव के आदेश को सामने रखना चाहिये– **'सतु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिर्भवति'**। दीर्घकाल तक और निरन्तर अभ्यास करने से ही समाधि दृढ़ होती है।

मुझे एक घटना याद आ गई। एक बार हम योग प्रचार में एटा जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ हमने अपने व्याख्यान में बताया कि पाँच लाख नमः शिवाय के जाप करने से भगवान शिव के दर्शन होते हैं। स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः स्वाध्याय से इष्ट देव का साक्षात्कार होता है यह योग का सिद्धान्त है। एक व्यक्ति सत्संग में हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहने लगा–महाराज जी ! आपको झूठ नहीं बोलना चाहिये। हमने पूछा–भाई ! हमने क्या झूठ बोला है ? वह कहने लगा–आप कहते थे कि पाँच लाख शिव मन्त्र के जप करने से भगवान शिव के दर्शन होते हैं किन्तु मुझे तो हुआ नहीं। उसने मुझे अपनी एक कापी दिखायी। उसमें लिखा था अमुक दिन मैंने शौच जाते हुये इतने मन्त्र जपे, अमुक दिन

मुकदमा में जाते समय इतना मन्त्र जपा, अमुक दिन अमुक काम करते हुये इतना मन्त्र जपा। इस तरह से उसने अपने पाँच लाख से ऊपर जाप का हिसाब बता दिया। देखा ! जाप का तरीका यह नहीं है।' **'दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़भूमिः** का तात्पर्य समझना चाहिए। साधक साधना को दीर्घकाल तक लम्बे समय तक करे निरन्तर लगातार प्रतिदिन करे। सत्कारपूर्वक करे, आदर पूर्वक करे। यही साधन मेरा कल्याण करने वाला है इस भावना से साधना करे तथा इष्ट देव का ध्यान करते हुए जाप करे तो दर्शन संभव होते हैं, अन्यथा नहीं। अभ्यास करते–करते साधक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भूमिकाओं में प्रवेश पाता है। सवितर्क और निर्वितर्क में योगी को खास अन्तराय नहीं आते इससे आगे सविचार में अन्तराय आया करते हैं। मनुष्य लोक के नजारे खत्म हो जाते हैं, लोक लोकान्तर का दर्शन होना प्रारम्भ हो जाता है। विचारानुगत समाधि से सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ। एक बार मैं चार छः महीने के लिए हरिद्वार में चण्डी के पहाड़ पर अनुष्ठान कर रहा था। वहाँ मेरी एक महात्मा से मित्रता हो गई। वह वैष्णव साधू था। बातचीत के प्रसंग में उसने कहा 'यहाँ रामगिर नाम का रोहतक का एक गंवार भी रहता है वह यहाँ तो लम्बी दाढ़ी रखकर समाधि में बैठा रहता है और इन्द्रपुरी में जाकर स्वर्ग की छोकरियों का नाच देखता है' वस्तुतः उस साधु की यह विचारनुगत समाधि थी जिसमें वह इन्द्रपुरी में चला जाता था और नृत्य आदि देखता था। इसी अवस्था में आकर्षण होता है, प्रलोभन इसी समाधि में आते हैं। साधक इस अवस्था से बच निकला तो आगे खतरा नहीं है। मैंने तुम्हें पहले भी बताया है कि योगी अपनी शक्तियों का आप मालिक होता है वह किसी के आधीन नहीं रहा करता। इसलिये जब वह मनुष्य लोक को पार कर देव लोक में पहुँचता है तो वहाँ के स्वाभिमानी देवता उसे रोकते हैं। देवताओं का दायरा सीमित होता है वे नहीं चाहते कि कोई हमसे आगे चला जाये इसलिए सविचार समाधि में देवता उसके सामने विघ्न उपस्थित कर दिया करते हैं। सविचार समाधि के अन्दर उसे मिथ्या दर्शन अर्थात् भ्रान्ति दर्शन होने लगता है। मुझे भ्रान्ति दर्शन की एक घटना याद आई। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभु जी हरिद्वार से पंजाब मेल में अमृतसर जा रहे थे। श्री मुल्खराज जी महाराज तथा कुछ और गुरु भाई साथ में थे। उसी गाड़ी में एक आदमी सवार था। उस का सिर कई जगह से फूटा हुआ था और खून बह रहा था। उसे ऐसी हालत में देखकर प्रभु जी कहते जाते थे–

लाख चौरासी के जीव को लाख कहो समझाय।
हम खेंचे सत्‌लोक को पोड्यो यमपुर जाये।

साथ वाले यह तो समझ ही रहे थे कि प्रभु जी इसे देखकर ही ऐसा कह रहे हैं। उन्होंने उसी व्यक्ति से पूछा–क्या कारण है तुम्हारा सिर फूटा है और प्रभु जी हंस रहे हैं। उसने अपनी सारी बात विस्तार से बतानी शुरू की। उसने बताया–हम पाँच व्यक्ति हरिद्वार चण्डी के पहाड़ पर योग सीखने गये थे। वहाँ कोई सिखाने वाला नहीं मिला इसलिए वे चार तो घर वापिस लौट गये किन्तु अकेला ही वह वहाँ रुक गया। वहाँ जंगल में एक सुन्दर बगीचा था किनारे पर एक घड़ा रखा था। आदमी कोई दिखाई नहीं देता था। मैं पास के झरने से घड़े में पानी लाकर पौधों को सींचने लगा

और वहाँ रहता रहा। सात दिन के बाद एक महात्मा आये वे अपने साथ पत्थर लाये हुये थे उनसे मुझे मारने लगे। मुझे कई चोटें आई। मैं पास के झरने के पास ही पड़ा रहा। उस पानी के लगने से मेरे सब घाव ठीक होने लगे मैं वहाँ पानी पीता रहा। एक सप्ताह बाद फिर वह महात्मा आये और बोले अच्छा ! तू अभी तक मरा नहीं है ? इसके बाद महात्मा जी ने मुझे एक फल खाने को दिया। इसके खाने से शरीर के घाव तुरन्त ही ठीक हो गये। फल के प्रभाव से उसका ध्यान लगने लग गया। उसकी स्थिति सविचार समाधि बन गई। उसे ध्यान में दिखाई दिया कि घर में उसकी स्त्री रो रही है। धन का अभाव है। खाने पीने की वस्तुओं की कमी हो रही है। उसने यह भी देखा कि घर में धन गढ़ा हुआ है। ध्यान में ऐसा देखने के बाद उसने सोचा–मैं वह धन निकाल कर दे आऊँ। महात्मा जी तो एक महीने बाद समाधि से उठ गये। इसके बाद महात्मा जी कई दिन तक भी समाधि में दोबारा नहीं बैठे। उस व्यक्ति ने कहा भी महाराज ! अब की बार आप समाधि में नहीं बैठ रहे हैं ? महात्मा ने कहा अब की बार तो हमारा कुछ और ही विचार है। हमारा विचार यह है कि अबकी बार हम तुम्हें ही समाधि में बैठा दें। क्योंकि तू भी तो हमारा बच्चा है। इसलिये हमारा यह संकल्प बना है कि हम तुम्हें एक माह के लिये समाधि में बैठा दें। वह सोचने लगा। अरे ! मेरी स्त्री तो धन के अभाव में मर जायेगी। महात्मा जी ने पूछा–क्या सोच रहा है ? वह कहने लगा–महाराज कुछ नहीं सोच रहा हूँ। **'गुरोरग्रे न वक्तव्यं असत्यम् च कदाचन्'** गुरुदेव के सामने कभी असत्य नहीं बोलना चाहिये। महात्मा जी ने कहा–बैठ जाओ समाधि में। वह कहने लगा–महाराज जी मैं तो आप की सेवा करूँगा। महात्मा जी कहने लगे अरे नहीं सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है। तू समाधि में बैठ। लेकिन वह बैठा नहीं। कई दिन से नींद का मारा हुआ था उसको नींद आ गई। महात्मा जी ने उसे नींद में ही अपनी योग शक्ति से उठाकर हरिद्वार में गंगा किनारे फैंक दिया।

प्रातः जब सूर्योदय हुआ तो उसकी नींद खुली वह घर गया और उसने देखा कि उसकी स्त्री खूब आनन्द में है उसे किसी प्रकार से धन का अभाव नहीं है। वह लौटकर फिर चण्डी पहाड़ पर उस महात्मा को ढूँढ़ने लगा किन्तु बहुत ढूँढ़ने पर भी उसे न वह बगीचा मिला न ही वह महात्मा। उस व्यक्ति ने अपने भाग्य को कोसते हुये अपने सिर को पत्थर पर मार–मार कर लहू–लुहान कर दिया और इसी हालत में अपने घर वापिस जा रहा था। इसको कहते हैं भ्रान्तिदर्शन। यह समाधि में एक बड़ा विघ्न होता है। योगी जब सविचार समाधि की उत्कृष्ट स्थिति पर पहुँचता है तब ऐसा हुआ करता है। किन्तु जो गुरुदेव के अनन्य निष्ठ बालक होते हैं उनकी गुरुदेव रक्षा किया करते हैं। जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता है। उस व्यक्ति को अपने गुरुदेव पर पूर्ण विश्वास नहीं था इसलिये यह दुर्गति हुई। हमारे पास भी एक रमणी नाम का साधु आया था। श्री प्रभु जी की कृपा से उसकी ध्यान स्थिति ऊँची बन गई थी। देवताओं को प्रलोभन तथा भ्रान्ति दर्शन होने लगा। मनमुखता की ओर योग मार्ग से भटक गया। यह प्रसंग मैंने कई बार तुम्हें बताया है। हमारे 'योग सिद्धान्त' पुस्तक में भी इसका विवरण दिया हुआ है। इसलिये तुम सब अपने को योग परायण बनाओ। ध्यान योग का अभ्यास करो। इसी से सब का कल्याण होगा।

* * *

संस्कार चक्र एवं इनका निरोध

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

"संस्कार" बहुत व्यापक शब्द है। योग साधना के क्षेत्र में जहाँ इसकी व्यापकता एवं गहराई को समझा गया है वहाँ हिन्दु संस्कृति में उत्तम संस्कार की महत्ता को लक्ष्य में रखते हुये इसे आत्म शोधन के लिए परमोपादेय के रूप में माना गया है। संस्कार शब्द का सीधा अर्थ है शुद्ध करना परिमार्जन अथवा शोधन करना। आयुर्वेद शास्त्र में भी द्रव्यों को कई प्रकार से शुद्ध करने को संस्कार करना कहते हैं। हिन्दु संस्कृति में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि आदि सोलह संस्कारों को मनुष्य के मन और बुद्धि के निरन्तर परिमार्जन द्वारा आत्मलाभ की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया ही संस्कार के रूप में माना जाता है। जन्म लेने के बाद मनुष्य को यदि अपेक्षित संस्कार नहीं होता है तो वह पशु तुल्य ही रह जाता है। **'जन्मना जायते शुद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते'** अर्थात् जन्म लेने के पश्चात मनुष्य को जब तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता है तब तक उसे शूद्र ही माना गया है। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने पर व्यक्ति द्विज बनता है। द्विज बन जाने के बाद गायत्री अजपा गायत्री का निरन्तर जाप करते रहने से मनुष्य के ऊपर पाप का भार नहीं रहता। जाप के बल से प्रतिदिन के होने वाले छोटे मोटे पापों का स्वतः क्षय हो जाया करता है।

प्राचीन काल से ही हिन्दु समाज में द्विजों में त्रिकाल सन्ध्या करने का विधान बनाया गया है। प्रातः सूर्योदय के समय, दोपहर के समय तथा सायंकाल सूर्यास्त के समय सन्ध्या की जाती है। इस प्रकार सन्ध्या आत्मशोधन एवं पुण्य वृद्धि का ठोस साधन है। सन्ध्या रूपी कर्म का चित्त पर शुभ संस्कार पड़ता है और यह आगे भी अपने जैसे शुभ संस्कारों को जन्म देता है। योग मत में दो प्रकार के कर्म होते हैं। एक क्लिष्ट कर्म जो संसार या पाप को देने वाले हैं तथा दूसरे अक्लिष्ट कर्म जो वैराग्य तत्व ज्ञान एवं मुक्ति की ओर ले जाने वाले होते हैं। चित्त की असंख्य वृत्तियाँ होती हैं जिन्हें भगवान् पतंजलि ने पाँच भागों में बाँटा है। ये क्लिष्ट–अक्लिष्ट वृत्तियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति के रूप में चित्त में रहा करती हैं जो शुभाशुभ कर्मों को उत्पन्न करती रहती हैं। जीव दशा में मनुष्यों में क्लेश, कर्म, विपाक और आशय रहता है। ईश्वर में ये कभी नहीं रहते। अविद्या आदि क्लेश चित्त में रहा करते हैं। इसी से नाना प्रकार के कर्म बनते हैं ये कर्म चित्त के संस्कार के अनुसार ही बनते हैं। कर्म का जो फल मिलता है जिसे विपाक कहते हैं। इसे कर्म फल अथवा विपाक से पुनः तत्सदृश्य संस्कार बनता है जो आशय के रूप में कर्माशय में संचित रहा करते हैं। सुख–दुःख के अनुभविता को जो सुख दुःखात्मक वासना रह जाती है उसे

ही संस्कार (Impressions) कहते हैं। इस प्रकार से संस्कार से पुनः वृत्ति तथा वृत्ति के अनुसार कर्म तथा कर्मवासना एवं पुनः संस्कार का चक्र बना रहता है। यही संस्कार मनुष्य के स्वभाव के रूप में उभर कर बाहर आकर चरित्र निर्माण के कार्य में कारण बनता है।

एक बार जन्मजा जो स्वभाव बन गया उसको हम अपनी इच्छा से भी अन्यथा नहीं कर सकते। **'स्वभावो हि दुरतिक्रमः'** मनुष्य का जैसा स्वभाव बन गया है उसमें बदलाव नहीं आया करता। गुरुकृपा एवं ध्यानयोग से ही इसे बदला जा सकता है अन्य कोई इनके बदलने का उपाय नहीं है। इस प्रकार से हर व्यक्ति अपने कर्म एवं संस्कार से निबद्ध है इसीलिये परवश होकर कर्मों में प्रवृत्त होता है। हमारे संस्कार चित्त भूमि में अनन्त काल तक भी पड़े रह सकते हैं।

मनुष्य ने अपने मन से कम्प्यूटर का निर्माण किया है। कम्प्यूटर मानव चित्त का ही प्रतिरूप है। किसी वस्तु को फीड करके Memory में डाल दिया जाता है। उस Memory को आवश्यकतानुसार खोल कर व उपयोग में लाकर इससे कार्य किया जा सकता है। हमारा चित्त भी संस्कारों स्मृतियों (Memories) का भंडार है। ध्यानयोग के द्वारा मन को एकाग्र करके इस जन्म की तो क्या हजार जन्मों के संस्कारों का साक्षात्कार किया जा सकता है। कम्प्यूटर में तो थोड़ी सी सीमित चीजों को संचित रखा जा सकता है जबकि चित्त में संस्कारों के संचय की असीमित क्षमता है। योग दर्शन के विभूति पाद में एक सूत्र आया है– **'संस्कार साक्षात्करणात पूर्वजाति ज्ञानम्'** अर्थात् संयम के द्वारा संस्कारों का साक्षात्कार कर लेने पर योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। योग दर्शन में ऐसा ही एक और सूत्र आया है जिसके अनुसार योगी भूत एवं भविष्य की घटनाओं–संस्कारों का साक्षात्कार कर सकता है। सूत्र है–**'परिणामत्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम्'** अर्थात् धर्म लक्षण एवं अवस्था रूप परिणामों पर संयम करने से योगी भूत–भविष्य की घटनाओं का साक्षात्कार कर लिया करता है।

योग मार्ग के साधक के लिए अध्यात्म संस्कारों का संचय आवश्यक है। गीता एवं उपनिषदों का संस्कार साधक को निरन्तर ब्रह्म भाव में प्रतिष्ठित रखता है। गुरुदेव भगवान् इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त सुनाया करते थे।

एक बार एक साधक सिद्धों के दर्शन की इच्छा से हिमालय की ओर गया। मन्त्रजाप तो उसका चलता ही था। हिमालय की तलहटी में एक दिन उसे एक ब्रह्मचारी मिला। उसने साधक से कहा–इस निर्जन वन में तुम क्यों आये हो ? साधक ने उत्तर दिया–मैं यहाँ सिद्धों के दर्शनों की इच्छा से आया हूँ। ब्रह्मचारी ने कहा–अच्छा, तुम यहाँ तक आ ही गये हो तो मैं तुम्हें सिद्धयोगी का दर्शन कराता हूँ। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी जी साधक को अपने साथ नितान्त जंगल में ले गये। वहाँ उन्होंने अपने गुरुदेव के दर्शन कराये। गुरुदेव की आयु ढाई सौ वर्ष की थी किन्तु वे २५–३० वर्ष के युवा ही लग रहे थे। उन्होंने साधक से पूछा–तुमने उपनिषदों का कितना स्वाध्याय किया है ? साधक ने कहा महाराज ! मैंने उपनिषद तो नहीं

पढ़े हैं। सिद्धयोगी कहने लगे, "अब तुम जाओ और उपनिषदों का अध्ययन करो। अन्तःकरण को और निर्मल बना लो। इस दिव्य क्षेत्र में मल–मूत्र का त्याग करने वाला व्यक्ति नहीं रह सकता"। वह साधक वापस आया और बिजनौर में भगवद् दत्त श्रोतीय के विद्यालय में उपनिषदों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। सिद्ध दर्शन का प्रत्यक्ष फल यह था कि एक बार के पढ़ने मात्र से ही उसे सब कण्ठाग्र हो जाता था। इस प्रकार से उस साधक ने एक वर्ष तक भगवद् दत्त जी के पास रहकर उपनिषदों का अध्ययन एवं मनन किया।

उपर्युक्त प्रकरण को यहाँ देने का मेरा अभिप्राय है कि उपनिषदों के पढ़ने से साधक वस्तुतः आध्यात्मिक बनता है। उपनिषदों में परमात्मा जीव एवं मुक्ति विषयक बातें हैं। इनके मनन करते रहने पर साधक के चित्त पटल पर ये संस्कार तैरते रहते हैं। अनात्म वस्तुओं में राग छूटता जाता है रजोगुण तमोगुण दब जाता है। चित्त में सात्विक वृत्ति की प्रधानता बनी रहती है। जगत के मिथ्यात्व का सदा ज्ञान चित्त में बना रहता है। इस प्रकार से एक शुभ वृत्ति का उदय हुआ, वृत्ति शान्त होती हुई अपने जैसे एक और वृत्ति को उदित कर देती है। इस प्रकार से यह प्रवाह बना रहता है। ऐसे व्यक्ति के चित्त से लोभ, क्रोध, क्रूरता, दुर्भाव निकल जाते हैं। वह सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक व्यक्ति बन जाता है। चित्त में एक ही प्रकार की वृत्ति शान्त और उदित होती रहती है। एक ही प्रकार के वृत्तियों का आवर्तन चलता रहता है। सम्प्रज्ञात समाधि की सर्वोत्कृष्ट अवस्था निर्विचार वैशारद्य है। इसके दृढ़तर अभ्यास से योगी को 'अध्यात्म–प्रसाद' मिल जाता है। जिसके लिये कहा गया है कि प्रज्ञा प्रासाद पर चढ़ा हुआ योगी सांसारिक शोकमग्न लोगों को उसी प्रकार से देखता है जिस प्रकार से पर्वत की चोटी पर पहुँचा हुआ व्यक्ति भूमिस्थ लोगों को देखा करता है। इसे ही ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं जो विवेक ख्याति का कारण है। इसके उदय होने पर ही संसार चक्र का अन्त होता है। विवेक ख्याति के संस्कारों की दृढ़ता हो जाने पर अन्य सभी संस्कार नष्ट प्रायः हो जाते हैं। **'तज्जः संस्काराः अन्य संस्कार प्रतिबन्धि'** विवेक ख्याति के संस्कार अन्य सारे संस्कारों को रोक देते हैं। चित्त में एक ही संस्कार निर्वाणोन्मुखी स्मृति के रूप में रहता है। निर्बीज समाधि के दृढ़तर अभ्यास से यह वृत्ति भी शान्त हो जाती है और योगी को कैवल्य लाभ हो जाता है। प्रकृति से सम्बन्ध छूट जाता है। **"सत्वपुरुषयोशुद्धिसाम्ये कैवल्यम्"** के अनुसार प्रकृति (बुद्धि) पुरुष की समान रूप से शुद्धि हो जाने पर कैवल्य लाभ हो जाता है जो योगी का परम लक्ष्य है।

चित्त वृत्तियों का नितान्त निरोध ही योग कहलाता है। विवेक ख्याति तक पहुँचने के लिये प्रबल शुभ संस्कारों का प्रवाह आवश्यक है। चित्त के निरोधावस्था को पा लेने पर सब संस्कार समाधि द्वारा दग्धबीज हो जाते हैं। इसी योगाग्नि को "ज्ञानाग्नि" कहा जाता है। ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन' अर्थात् यह ज्ञान रूप योगाग्नि सब प्रकार के शुभाशुभ संस्कारों को जला डालता है तभी निर्बीज समाधि में दृढ़ प्रतिष्ठा हो जाती है।

❊ ❊ ❊

मेरे सद्गुरुदेव

डा. विजय सिंह, गोरखपुर

शिवपुराण के वायवीयसंहिता में कहा गया है– वे महाभाग्यवान हैं, जिनकी कुण्डलनी शक्ति गुरुकृपा से जाग चुकी है। उसके अन्तः में भगवत प्रेम का ज्वार प्रबल वेग से उमड़ने लगा है, ऐसे लोगों को साधारण मत समझो। जब आग लोहे में प्रवेश कर भली प्रकार तप्त कर गयी हो तो क्या तब वह साधारण लोहा रह जाता है। उसमें और आग में क्या अन्तर है। उसी प्रकार गुरुकृपा से जाग्रत कुण्डलनी शक्ति वाले मानव को साधारण मत जानो। वैसे लोगों का निजत्व दिव्य प्रेम में डूब चुका होता है। दिव्यता उनकी हर क्रिया में दिखाई पड़ती है। दिव्य शक्तियाँ लहराने लगती हैं। उन्हें सर्वथा पूजनीय मानो।

मेरे सद्गुरु देव के असंख्य कृपा पात्रों में से कुछ एक का सानिध्य इस संशयशील को भी अतीत में मिला। इस लेख के माध्यम से नवीन साधकों अथवा उनको जिन्हें हमारे सद्गुरु के स्थूल विग्रह दर्शन का अवसर नहीं मिला है, परिचय कराने का एक तुच्छ प्रयास कर रहा हूँ।

गौर वर्ण, लम्बा छरहरा शरीर, कालरदार लम्बा कुर्ता और चुस्त पैजामा या धोती पहने एक वरिष्ठ गुरुभाई का स्मरण हो रहा है। नाम श्री महेन्द्र नारायण। ग्राम बरैनी कोरपर जिला मिरजापुर। सद्गुरु से दीक्षा १९६१ ई० में इन्हें इलाहाबाद में सोमवार के दिन प्राप्त हुई। इनको लगातार हमने कई घण्टे ध्यानस्थ देखा था। तकरीबन एक बार लगातार आठ नौ घण्टे। चार–पाँच घण्टे तो सदैव ही पदमासन अथवा स्वस्तिक आसन में रीढ़ की हड्डी तनी हुयी रख कर ध्यानस्थ बैठते अक्सर देखता था। सद्गुरु प्रेम पूरित बातें। गजब की निष्ठा सतसंग में सद्गुरु प्रेम से ओत प्रोत स्वनिर्मित भजन गायन। एक गजब की आध्यात्मिक लहर हमारे सदगुरु देव ने इन पर कृपा कर हमारे क्षेत्र में फैलाया। जिसके प्रभाव से अनेक नर–नारी योग से परचित हुये तथा सद्गुरु महात्म को अपने जीवन में अनुभव किया। और आज भी उन कृपानाथ की कृपा का घरों में आस्वादन हो रहा है।

दीक्षा से पूर्ववर्ती जीवन–

चूंकि इनसे मेरा साक्षात्कार उस समय हुआ जब हम स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। वर्ष १९६५ ई०। उनके मुख से ही कई बार वे कैसे सद्गुरु चरण शरण ग्रहण किये की कथा सुनी। वे बताते थे कि मेरा अन्तःकरण नास्तिकों जैसा था। कम्युनिष्ट विचार धारा तथा तर्कशील स्वभाव था। मैं कब्ज एवं मानसिक रोग से पीड़ित था। ईश्वर और धर्म को पाखण्ड समझता था। उन्हीं दिनों दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित "योग साधना द्वारा साध्य

असाध्य रोगों की निःशुल्क चिकित्सा" का विवरण पढ़कर अकस्मात मैं इलाहाबाद दिये पते पर योगिराज से यौगिक चिकित्सा हेतु मिलने गया। मेरी आशा के विपरीत योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी श्वेत धोती, ऊनी कुर्ता (जाड़े का समय था) ऊपर जैकेट पहने क्लीन शेव्ड अति सौम्य, सुपुष्ट काया, बनावट रहित प्रतीत हुये। जब हमने अपनी समस्या को निवेदन किया तो योगिराज जी ने अपने एक ब्रह्मचारी को बुलाकर हमें सूत्र नेती, नाक द्वारा दुग्धपान तथा जीवन तत्व साधन सिखाने की आज्ञा दी। आश्चर्य। इन क्रियाओं को करते ही मुझे तत्काल लाभ हुआ।

कुछ दिनों बाद जब घर लौटने लगा तो योगिराज ने स्नेहमयी वाणी में आदेश दिया कि चैत्र रामनवमी पर सवाई आश्रम आना।

सन १९६० के चैत्र रामनवमी पर सवाई आश्रम गया। यहाँ आरती के समय "प्रभो पाहि नमामिश शम्भो" की समवेत ध्वनि लगाते लगाते स्त्री, पुरुष बच्चों को ध्यानस्थ होकर गिरते, भावपूर्ण नृत्य करते अथवा जड़ीभूत स्तम्भित होते देख मन में कुछ कौतुहल जगा। लोगों से पूछा तो उन लोगों ने यहाँ की चमत्कारिक घटनाओं का भावपूर्ण विवरण दिया। उत्सव के बाद गुरुदेव जी से दीक्षा देने हेतु प्रार्थना किया तो ये बोले लल्ला ! इस बार घर जाकर श्री प्रभुजी (अनन्त श्री योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी) के चरणों का स्मरण करना। अगले वर्ष प्रयाग मेले में गुरुदीक्षा दे दूँगा।

प्रथम अनुभूति–

भाई महेन्द्रनारायण सिंह अपनी अनुभूतियों को आत्म विभोर होकर सबको बताते रहते थे। उनमें से एक मैं भी था। उनकी स्कूली शिक्षा प्रायमरी पाठशाला से आगे की नहीं थी। परन्तु अभिव्यक्ति शैली एवं स्वाध्याय काफी अधिक था। उनका गाँव ठीक गंगा के तट पर है। आश्रम से लौटने के पश्चात नियम पूर्वक नेती, दुग्धपान एवं जीवनतत्व साधन बड़े ही उत्साह पूर्वक करने लगे थे। ये बताते थे कि गंगा किनारे होने पर भी पहले गंगा स्नान के प्रति भाव मन में नहीं था। परन्तु श्री सद्गुरु भगवान के दर्शन एवं सिद्धगुफा पर हो आने के बाद वे नित्य गंगा स्नान करने जाने लगे थे।

एक दिन जब वे गंगा स्नान को जा रहे थे तो उन्हें अकस्मात योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी (दादा गुरुदेव) का दर्शन खुली आँखों होने लगा। जटा जूट मण्डित बड़ा ही विशाल स्वरूप हाथ में लम्बा चिमटा लिये दीख पड़े। यह अनुभव उन्हें खुली आँखों आते जाते गंगा स्नान करते होता रहा। आगे चलकर जब भी कोई संकट उन पर आता तो महाप्रभु का स्मरण आते ही भवभयहारी अनाथनाथ महाप्रभुजी दर्शन देने आ जाते तथा मन स्वतः उनके अभय चरण कमलों में बरबस खिंच जाता और शांत हो जाता।

अब नित्य गंगा स्नान करने जाते तथा आते समय आगे आगे श्री सदगुरु भगवान जी

चलते दिखाई देते तथा आश्रम में होने वाले आरती के पद चरणारविन्दं गुरुदेव नमामि के गान का लय मेघ गर्जना सी नाद के साथ श्री सदगुरु जी के मुख से निकलता सुनाई पड़ता। यह गूँज अनहद नाद की तरह घण्टों सुनाई पड़ता रहता। मन स्तम्भित, आनन्दित, रोमांचित पुलकित नाना भावों में रंगा हुआ रहता।

सिद्ध सदगुरु के दिव्य शक्तिपात से जाग्रत अभ्यन्तर कुण्डलिनी शक्ति साधक को कब, कैसे रूपान्तरण के लिये प्रेरित करेगा यह मात्र सदगुरु ही जानते हैं। हम सदगुरु को नहीं जानते परन्तु वे कृपालु हमें अपनाने के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में होते हैं। सभी कार्यों के लिये मायिक जगत में एक निश्चित समय निर्दिष्ट होता है। भाई महेन्द्रनारायण जी को स्वास्थ्य आरोग्यता के निमित्त अपने पास बुलाकर शनैः शनैः उन्हें प्रभु जी ने अध्यात्म की ओर लगा दिया।

साधक को सदगुरु का कृपा पात्र होना आवश्यक है। इसलिए पहले आधार का निर्माण होना चाहिए। यम, नियम, आसन, प्राणायाम आधार तैयार करते है। सदगुरु द्वारा जाग्रत कुण्डलनी अपने आप अन्तर तम का नाश करके अध्यात्म प्रसाद से प्रसादित करती हुयी साधक को सम्प्रज्ञात के चारों तलों से परिचय कराती है। शब्द से ज्योति, ज्योति से रूप दृश्यों का अविर्भाव होता है। प्राकृतिक अशुद्ध शब्दों के संघात से नाना प्रकार के संकल्प विकल्पों का जन्म सदैव हमें घेरे रहता है। जब सदगुरु देव मंत्र रूपी शुद्ध शब्द और गहरे में कुण्डली जागरण से उदभव प्राप्त अनहद नाद प्रकाशित करते हैं अथवा साधक जब सदगुरु प्रदत्त मंत्र का मानस अवगाहन करने में समर्थ होने लगता है तब मलिन शब्दों के विकार, मंत्र–अग्नि में स्वतः आकर्षित होकर दग्ध होने लगते हैं। इस क्रम में साधक को पहले अस्पष्ट प्रकाश इसके बाद स्पष्ट प्रकाश अन्ततः चिद् ज्योति की अभिव्यक्ति का अनुभव होता है। आँखें बन्द हों या खुली आलोक दर्शन दोनों अवस्थाओं में सम्भव है। ज्यों–ज्यों ज्योति का विस्तार अखण्ड होने लगता है शब्द भाव तनु (क्षीण) होता जाता है। सम्प्रज्ञात ज्योति में ही सभी दिव्य–दृश्यों का व्यापार गठित होता है। मूर्ति, मंदिर, झरना, नदी, समुद्र, अग्नि, तारे, तारिका समूह, उद्यान, पर्वत, कल कारखाने विभिन्न प्रकार के उन्नत जीव जो ध्यान मे परिलक्षित होते हैं सभी ज्योति निर्मित होते हैं। इन सभी दृश्यों को ज्योति ही घेरे हुये होती है। यही आत्म प्रकार का प्रारम्भिक दर्शन है।

अब बड़े समय के व्यतीत होने पर भाई महेन्द्रनारायण पर सदगुरु भगवान की कृपा से उन्हें होने वाले दिव्यानुभूति जिसकी चर्चा सतसंग अथवा एकान्त वार्ता में हम लोगों से किया करते थे स्मरण हो रहा है। उन्हें बन्द और खुली आँखों आदिनारायण महाप्रभुजी एवं सदाशिव सदगुरुदेव जी के दिव्य दर्शन कैसे अयाचित रूप में श्री प्रभु जी ने दिया था जिसका विवरण ऊपर किया गया है और अन्य लेखों में उनके अथाह विवरण उनकी निजानुभूतियों के आधार से अपने श्री सदगुरु के स्वरूप का अभिज्ञान करेंगे।

❊ ❊ ❊

दिव्यांश को जीवन दान

अवनीश भटनागर (सहारनपुर)

अखण्डानन्द बोधाय शिष्य सँताप हारिणे
सच्चिदानन्द रूपाय तस्मै श्री गुरुवे नमः

परम् करूणा सागर प्रभु श्री गुरुदेव भगवान सदैव अपने मुखारविन्द की अमृत वाणी द्वारा महाप्रभु की अपने बालकों पर अहैतुकी कृपा दृष्टि व वे पल पल रक्षक है, कहते रहे है कि–"हर समय सोते जागते, खाते–पीते, चलते–फिरते श्री प्रभुजी के चरणकमलों का चिन्तन करते हुए अपने गुरुमंत्र का जप निरंतर करते रहो। वे कृपासागर सब प्रकार से अपने बालकों का कल्याण अवश्य करते हैं, पल पल उनके साथ हैं। लगभग चालीस वर्ष पहले श्री गुरुदेव जी के साथ इलाहाबाद में हुए वार्तालाप का स्मरण हो रहा है। उन दिनों इलाहाबाद में श्री सद्गुरुदेव भगवान अलोपी बाग में डाक्टर बी०पी० जौहरी (गुरुभाई) जी के यहीं ठहरा करते थे। एक दिन सायंकालीन नित्य कर्म से निवृत होने के पश्चात् बाँध पर चल रहे थे कि अचानक भाई रवीन्द्र जौहरी के किसी बात के कहने पर आगे बढ़कर हम से कहा, "लल्ला! हम तुमसे बच्चों के पत्रों का उत्तर दिलाते समय लिखवाया करते हैं कि श्री प्रभु जी के चरणकमलों का हर समय चिन्तन स्मरण करते हुए अपने गुरुमंत्र का जप करते रहो वे कृपा सागर श्री प्रभुजी सब प्रकार से कल्याण करेंगे। मैं सत्य कहता हूँ श्री प्रभु जी सदैव ऐसा करने से अपने बच्चों की सुनते हैं व उन पर कृपा अवश्य करते हैं, परन्तु मेरी इन बातों पर कोई गौर नहीं करता।

सहारनपुर श्री महाप्रभुजी की प्रिय लीला नगरी रही है। श्री गुरुदेव भगवान के अनेकों कृपा पात्र बालकों में उनका लाड़ला बालक भाई अवनीश भटनागर जिसे श्री प्रभुजी ने १३ मार्च २००४ को पुत्र प्रदान किया था उसके प्राणों पर आये घोर संकट से प्रिय अवनीश की अटल प्रेम पूर्ण श्रद्धा से भरी करुण पुकार सुनकर हमारे प्रभु दौड़ पड़े व अस्पताल में प्रकट होकर 'दिव्यांश' को उस घोर प्राण संकट से उबार कर जीवन प्रदान करने की कृपा किस प्रकार की यह प्रिय अवनीश भटनागर के ही शब्दों में प्रस्तुत है।

दिव्यांश को जीवन दान

"आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी की परम कृपा से मुझ दीन हीन दास को गृहस्थ जीवन में १३ मार्च २००४ को पुत्र रत्न का जन्म हुआ। प्रसव सामान्य रूप से हो गया था पर बच्चे को कुछ घंटे बाद ही पीलिया प्रारम्भ हो गया जो तेजी से बढ़ने लगा। तुरंत डाक्टरों को दिखाया गया, डाक्टरों की राय थी कि माँ का

ब्लड ग्रुप 'बी' नेगेटिव और बच्चे का ब्लड ग्रुप 'बी' पौजिटिव होने से ऐसा हो रहा है। तत्काल पीलिया का टैस्ट कराया गया तो परीक्षण में २४ आया। डाक्टर ने तुरंत खून बदलने की सलाह दी। खून बदलना खतरे का काम था और नेगेटिव ग्रुप का खून मिलना भी मुश्किल था। हमने तुरन्त एक डाक्टर को छोड़ दूसरे डाक्टर से परामर्श किया उसने भी वही बात कही और कहा कि आप बच्चे को तुरंत ले आइये हम खून बदल देंगे। हमें उसके खतरों को भी बताया कहा कि यह भी आपरेशन ही है। डाक्टरों की राय थी कि एक बार खून बदलने से और फोटोथेरेपी देने से पीलिया का स्तर काफी नीचे आ जाता है और फिर धीरे धीरे ठीक हो जाता है।

१५ मार्च रात्रि साढ़े बारह बजे से लेकर ३ बजे तक आपरेशन थिएटर में बच्चे का खून बदला जाता रहा और बाहर बैठा हुआ यह दास गुरुमंत्र का निरंतर जप करता रहा। अब बच्चे को आपरेशन थिएटर से बाहर लाये तो बच्चे का पीलिया काफी कम दिखाई दे रहा था। परन्तु आश्चर्यमय तरीके से पुनः पीलिया बढ़ने लगा जिससे हम सब पारिवारिक जन और डाक्टर भी विचलित हुए। टेस्ट कराया गया तो पीलिया बढ़ा हुआ आया। डाक्टर ने हमसे कहा कि एक बार और खून बदलना पड़ेगा तो ही बच्चे की प्राणरक्षा हो सकेगी पर दूसरी बार खून बदलने में खतरे कम नहीं हैं। बल्कि और ज्यादा हैं। और बी नेगेटिव ग्रुप का खून मिलना वैसे ही बहुत मुश्किल काम था। पहली बार ही बड़ी मुश्किल से एक नेगेटिव ग्रुप की बोतल के बदले दो पौजिटिव ग्रुप की बोतलें और १००० रु० देने पड़े थे। अब फिर डाक्टर ने एक बोतल नैगेटिव ग्रुप का खून और माँगा। परेशानी और बढ़ गई। अब खून का प्रबन्ध कहाँ से और कैसे करें ? क्योंकि ब्लड बैंक वाले खून के बदले खून ही देते हैं और पैसा अलग से। पर बदले में खून का प्रबन्ध कैसे हो यह एक भारी समस्या बनी हुई थी। उधर बच्चे का पीलिया तेजी से बढ़ता जा रहा था। हमारे निकटतम प्रिय साथी ने खून दिया और १००० रुपये भी जमा कराने पड़े। नैगेटिव ग्रुप का खून लाकर डाक्टर को दिया। डाक्टर ने खून बदलना शुरू किया। बच्चे और हमारे लिये एक बार फिर संकट की घड़ी सामने थी लगातार मैं अपने गुरु मंत्र का जप करता रहा। ख़ू बदले जाने पर डाक्टर ने इस आशा से कि अब यह ठीक हो जायेगा बच्चा हमें लाकर [illegible]था। हमें भी कुछ बच्चे के जीवन की आशा बँधी, परन्तु थोड़े ही समय बाद पीलिया फिर बढ़ने लगा। डाक्टर ने फिर चैकअप किया। चैकअप के बाद डाक्टर ने मुझे अपने कक्ष में बुला कर बड़े दुःख भरे शब्दों में कहा कि सौरी–बच्चे की स्थिति चिंताजनक है इसे तुरंत PGI चण्डीगढ़ में ले जाइये। डाक्टर को इस प्रकार कहते सुन मैं तो स्तब्ध रह गया। मैं बोला कि डाक्टर साहब आपके हाथ में कुछ नहीं रहा। डाक्टर ने मुझसे कहा कि नहीं अब मैं तीसरी बार खून बदलने का रिस्क नहीं ले सकता, आप बच्चे को जल्दी चण्डीगढ़ ले जाइये।

मैंने डाक्टर से पुनः पूछा कि क्या इसका यहाँ कोई इलाज नहीं है ? डाक्टर ने कहा

नहीं। अगर आप तुरंत चण्डीगढ़ P.G.I. नहीं ले गये तो बच्चा यहाँ रात भी नहीं निकाल पायेगा। अब तो यह भगवान भरोसे ही है। अब जब बात भगवान भरोसे की आ गई तो मुझे तुरंत अपने कल्याणमय सर्वशक्तिमान सदगुरुदेव जी का तीव्र स्मरण हो आया। उनका स्मरण होते ही शरीर में रोमांच हो आया और आँखों में पानी छलछला गया और मुँह से निकला कि मैं तो इसे लेकर कहीं जाता नहीं अगर आपको इसकी जिन्दगी बख्शनी है तो यहीं बख्श दें। आपकी कृपा से सब कुछ सम्भव है। जब मैंने बच्चे को मशीन में जाकर देखा तो बच्चा पहले से काफी सुस्त और निढाल हो गया था और पीलिया बढ़ता ही जा रहा था। मेरे मन में बार बार यही बात आ रही थी कि मैं ऐसा कौन सा साधन करूँ जिससे बच्चे की जान बच सके पर कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

बच्चे को पल पल मृत्यु की ओर जाते हुए देखकर हृदय विदीर्ण हो उठता था। बार बार हताश होकर रह जाता था और छटपटा कर यही सोचता था कि ऐसा क्या करें जो बच्चे की प्राणरक्षा हो सके पर कुछ भी रास्ता नहीं सूझ रहा था। हर ओर से हताश होकर मेरे मुँह से बार बार यही निकलता था कि हाय बच्चे मैं तेरे लिये कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। बच्चे मैं तो असमर्थ हूँ पर तेरे पापा के गुरुदेव असमर्थ नहीं हैं वह तो सर्व शक्तिमान हैं। उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं वह जो चाहें कर सकते हैं वह तो मुर्दे में भी प्राण फूँकने वाले हैं। ऐसा मन में विचार आते ही स्मरण हो आया कि फिर बच्चे में तो अभी जान बाकी है। तुरंत सर्व शक्तिमान श्री सदगुरुदेव के चरणों में आर्त पुकार की और जो जो श्रद्धा भाव मन में आते चले गये निवेदन करता चला गया। पता नहीं श्री चरणों में क्या क्या निवेदन किया। इस प्रक्रिया में सायं ४ बजे से रात्रि के ११ बज गये।

आने जाने वाले भी बराबर आ जा रहे थे। मैं सबसे अलग श्री सद्गुरु चरणों में मन लगाऐ था। मैं निरंतर श्री गुरुमंत्र का जप कर रहा था। सहसा मुझे लगा कि कुछ करने से रह गया है और जो रह गया था वह था श्री सिद्धगुफा की करामाती रज का सेवन। मैं पवित्र रज को सूतक में होने के कारण स्पर्श नहीं कर सकता था। मैंने तुरंत किसी से अपने घर पर स्थापित श्री महाप्रभुजी के सिद्ध दरबार में से रज लाने को कहा। गुफा की रज (श्री गुरुदेव जी के कर कमलों द्वारा दी गई थी) तुरंत मेरे पास पहुँचा दी गई। दो दिन के बच्चे को रज प्रसाद दिया गया और मैंने यह बात चुपके से बच्चें के कान में कही है ! करुणा निधान महाप्रभुजी आपने अनेकों बार श्री मुख से कहा, "मेरे आत्म तेजांश बच्चे," जब मैं आपका बच्चा हूँ तो यह भी आपका ही बच्चा है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं यह आपका ही अंश है यानि आपका दिव्य अंश अर्थात् "दिव्यांश" इसका कुछ नहीं होना चाहिये। यह आपका है यदि अब इसका कुछ हो गया तो दुनिया यही कहेगी दिव्यांश को हो गया क्योंकि दिव्यांश का कुछ नहीं बिगड़ता वह सदैव अजेय रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत बातें

उनके श्री चरणों में रखता रहा सब बातें यहाँ लिखने का विषय नहीं। उधर घर पर श्री महाप्रभु जी के दरबार में (जहाँ पर प्रत्येक मंगलवार को श्री गुरुदेव जी के सन् १६८८ में श्री मुख द्वारा दिये गये आदेशानुसार सिद्धयोग सत्संग का आयोजन होता है और वही दिव्य कृपायें प्रति मंगलवार उपस्थित जनों को देखने में आती हैं) हमारी माता जी यानि चि० दिव्यांश की दादी जी जो श्री प्रभु जी की परम भक्त हैं, निंद्रा, भोजन आदि सब त्याग कर निरंतर गुरुमंत्र का जप करते हुए अभय श्री गुरुचरण में मन लगाये बैठी थीं। रात्रि के तीन बजे करुणामय सर्वशक्तिमान सद्‌गुरु भगवान को हमारे बच्चे की दशा पर दया आ ही गई। दिव्यांश के जीवन दान की अर्जी मंजूर कर ली गई। सहसा कमरे में ही श्री महाप्रभु जी की छवि दृष्टिगोचर होने लगी। उनके कर कमल में से प्रकाश की एक मोटी धार निकल कर बच्चे पर पड़ी, तुरंत ऐसा प्रतीत हुआ कि चिरंजीव दिव्यांश को जीवनदान सर्व शक्तिमान सद्‌गुरुदेव भगवान ने दे दिया। उधर बिल्कुल यही दिव्य नजारा प्रभुदरबार में पूजा में बैठी चि० दिव्यांश की दादी जी को भी दिखाई दिया। उन्होंने तुरंत ही बच्चे का हाल जानने के लिये अस्पताल में फोन किया। मेरी जब उनके बात हुई तो वह सब हाल बता कर बोलीं कि घबराने की बात नहीं है कृपा हो चुकी है जीवन दान मिल चुका है। मैंने जो इधर देखा था हालाँकि वह दोनों एक जैसे ही नजारे थे फिर भी अतिप्रसन्नता के कारण से सब बता दिया और तुरंत जिस मशीन में बच्चा रखा था वहाँ पहुँचा और श्री महाप्रभु जी का स्मरण करके बच्चे को देखा तो बच्चे के स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक सुधार नजर आया। हमारी खुशी का तो ठिकाना ही नहीं रहा प्रातः आठ बजे तक बच्चे में काफी सुधार हो गया था। अस्पताल का स्टाफ यह जानने के लिये कि बच्चा तो जीवित नहीं होगा बारी बारी से आकर देखने लगे और आपस में बातें करने लगे। मैंने उनसे जानना चाहा कि बच्चे की अब क्या कन्डीशन है वह बोले कि डाक्टर बतायेंगे। मैंने जब ज्यादा जोर देकर पूछा कि भाई इन्सानियत के नाते ही सही यह बताओ कि अब इसकी हालत कैसी है क्योंकि आप लोगों ने रात भर के बाद अब देखा है आपको इसके स्वास्थ्य में क्या अन्तर नजर आता है तो वह लोग बोले कि हाँ फर्क तो है पर यह कैसे हो गया ?

लगभग ग्यारह बजे आकर डाक्टर ने बच्चे को चैक किया तो डाक्टर भी अचम्भे में आ गये कि यह चमत्कार कैसे हो गया। डाक्टर ने कहा इसे तुरंत O.T. (आपरेशन थिएटर) में ले आओ मैंने पूछा क्यों ? डाक्टर ने कहा कि बच्चे को दवाइयाँ ग्लूकोज आदि सब कल बन्द कर दिया गया था वह सब शुरू किया जा रहा है और ब्लड टैस्ट और करा रहे हैं। ब्लड की रिपोर्ट आई तो उसमें पीलिया आश्चर्य जनक कम आया। एक टैस्ट दोपहर को कराया तो उसमें और भी कम आया। डाक्टर भी अचम्भे में थे फिर शाम को भी टैस्ट कराया उसमें लगभग नार्मल रिपोर्ट आई। पैथोलोजी वाला डाक्टर भी पिछले दो दिनों से पीलिया को खतरनाक ढंग से बढ़ते हुए देख रहा था। जब उसने आश्चर्यमय तरीके से कम होते

हुए देखा तो उसने हमें बुलाकर पूछा कि यह कैसे हो गया। कहने का अभिप्राय यही है सभी लोग उनकी कृपाओं को नहीं जान सकते और जो क्षणिक जान भी लेते हैं वह फिर उन अभय श्री चरणों में समर्पित हुए बिना रह नहीं सकते। चि० दिव्यांश को श्री सद्‌गुरु कृपा से जीवन दान मिला यह विशुद्ध रूप से श्री गुरुदेव जी की कृपा लीला थी जो अनेकों श्रद्धालु व्यक्तियों के श्रद्धा संवर्द्धन का कारण बनी अब 'सिद्धयोग' के विज्ञ पाठकों के लिये भी श्रद्धा संवर्द्धन का कारण बने व दिन प्रतिदिन उनके श्री चरणों में अनुराग बढ़े इसी भावना के साथ प्रस्तुत है उनकी यह कृपामयी लीला।

* * *

सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी का अवतरण

प्रेषक–**वेदव्रत द्विवेदी,** माण्डा, उमापुर, इलाहाबाद

सिद्धों के हो सरताज महाप्रभु, अनादि महासिद्ध कहलाते हो।
भक्तों के रक्षार्थ हर युग में, सद्‌गुरु तत्व रूप में दिव्य दर्शन देने आते हैं।।
राम कहूँ या कृष्ण कहूँ या भूतभावान ईश शंकर।
भक्तों के श्रद्धा अनुरूप आप "महाप्रभु जी" अनेकों रूप दिखाते हो।
मेरे महाप्रभु श्री रामलाल पूर्ण विशुद्ध ब्रह्म अवतारी हैं।
तुम ही करुणा सागर हो, तुम ही प्रलय भयंकारी।
तुम ही सृष्टि के 'रचयिता' हो तुम ही विश्वपालनहारी।।
'भू" लोक से ब्रह्म लोक पर्यन्त तुम्हारी सत्ता।
पाया जान कब किसने, तेरी अलग महत्ता।
रवि, शशि गगन प्रतिदिन जिसका करता "अभिनन्दन"।
उस परम पिता परमेश्वर का हम भी करते प्रति क्षण वन्दन।।
ऋद्धियाँ सिद्धियाँ जिनके चरणों में अनवरत चँवर डुलाती हैं।
महालक्ष्मी, महामाया, दुर्गा दर्शन कर साधना, सकल बनाती हैं।।
चैत मास सुदी पुनीत तिथि नवमी, को आपका प्रादुर्भाव हुआ।
इस "भूमा" योग योगेश्वर ने अपने सद् शिष्य, योगिराज,
"चन्द्रमोहन" "नाम आबाद किया"।।

* * *

''संस्कार शक्ति व साधना शक्ति''

(भाग-१३)

–कु० रुक्मिणी वर्मा (सहारनपुर)

अत्यधिक दुखों ने नरेन्द्र के संसार में असारता पैदा कर दी, दुरंगी दुनिया देखकर व 'संसार दुखों का घर है' इन विचारों ने मन में वैराग्य पैदा कर दिया। सोचा कि हो सकता है कि स्वामी रामकृष्ण जी की कृपा से मेरे परिवार के कष्ट दूर हो जायें। स्वामी जी ने कहा कि जा, आज काली के मन्दिर में जो माँगेगा, माँ तुझे देगी। नरेन्द्र माँ के मन्दिर में सब कुछ भूल गये और कह बैठे–"माँ! विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो। माता तुम्हारी कृपा से सदा तुम्हें ही देखूँ।" लौटकर आये तो स्वामी जी ने पूछा कि क्या माँगा? नरेन्द्र बोले- अरे! ये क्या हुआ? पुनः मन्दिर में गये, फिर वही वैराग्य माँग बैठे। स्वामी जी ने कहा कि "जब न माँग सका तो तेरे भाग्य में सांसारिक सुख है ही नहीं। परन्तु मोटे वस्त्र व रोटी की कमी न होगी। फिर भी काफी हद तक अभाव दूर हुआ अटर्नी ऑफिस में काम मिला, बाद में विद्यासागर स्कूल में अध्यापन कार्य पर लग गये। परन्तु दुखों पर दुखों की बाढ़ ने नरेन्द्र के अन्दर सांसारिक आसक्ति नष्ट करके वैराग्य प्रबल कर दिया था। अतः सोचने लगे कि साधारण मनुष्यों की तरह वस्त्रादि पहन कर भ्रमण करूँगा तो भिक्षुक लोग धनवान समझ मुझसे भिक्षा माँगेंगे, मैं तो स्वयं एक भिखारी हूँ। मेरे पास देने को एक पैसा नहीं, परन्तु यदि गेरुआ वस्त्र पहन लूँ तो मुझे भिक्षुक समझ कोई मुझसे भिक्षा न माँगेगा। अतः त्याग और चरित्र से उन्नत संकल्प से अटल तरुण नरेन्द्र रामकृष्ण परमहंस को आदर्श बनाकर दुश्चर तपस्या में व्रती हुए। परिवारी नरेन्द्र अब पूरी पृथ्वी के पुजारी हो गये। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वयं उन्हें सन्यासी वस्त्र पहनाये। स्वामी जी नरेन्द्र के तर्क–वितर्क से बहुत प्रसन्न होते थे। जबकि नरेन्द्र ने तीन वर्ष तक अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस की बार–बार परीक्षा ली तब जाकर समर्पण किया परन्तु ये भी गुरुदेव की लीला थी। स्वामी जी नरेन्द्र के तर्क से बहुत खुश होते थे। उसके पीछे उसकी तारीफ में सबको बताया करते थे कि नरेन्द्र गाने में, बजाने में, पढ़ने–लिखने में सब विषयों में अच्छा है, देखो तो केदार के साथ तर्क किया था और उसकी बातों को खटाखट काटता गया। देखो, जब किसान बाजार से बैल खरीदता है तो वह जानता है कि कौन सा बैल अच्छा है और कौन सा बुरा। वे पूँछ के नीचे हाथ लगाकर परखते हैं। कोई–कोई बैल पूँछ पर हाथ लगाने से लेट जाते हैं। वे ऐसे बैल नहीं खरीदते। कोई–कोई ऐसे होते हैं, मानो उनमें प्राण नहीं। परन्तु कोई बैल पूँछ पर हाथ रखते ही कूद पड़ता है, बड़ी तेजी से उछलता है, उसी बैल को वे चुनते हैं। नरेन्द्र इसी बैल की जाति का है। भीतर से खूब तेज है।

यदि नरेन्द्र में विद्या के प्रति सच्चा अनुराग न होता, ईश्वरीय अनुसंधान में पहले ही चित्त न होता तो मिशन के प्रचार व प्रसार के लिये परमहंस जी उसका चुनाव क्यों करते,

उनके अनेकों शिष्य थे परन्तु शास्त्रार्थ तथा पांडित्यपूर्ण तर्क शैली जो नरेन्द्र में थी, अन्य में नहीं. ईश्वर भक्ति भी प्रगाढ़ थी।

स्वामी दयानन्द जी ने भी दुनिया में कम कष्ट नहीं उठाये। वैभवशाली घर में पैदा हुए थे परन्तु परम सत्य की खोज के धुनी थे। ऐसा कोई आश्रम तथा मठ नहीं था, जहाँ दयानन्द न गये हों। कई लोगों ने इन्हें अपने वश में करके अपने ही मिशन के प्रचार के लोभ में साधना कराने के प्रलोभन दिये। आश्रम में रहना कोई हँसी–खेल नहीं है। जिसका अन्न खाओ उसकी दाब में पूरी तरह रहना पड़ता है। जायज और नाजायज बात भी स्वीकार करनी पड़ती है। परन्तु दयानन्द किसी के दबाव में नहीं आये, बल्कि आश्रमों के अन्दर चल रहे पाखण्डों व लोभियों का खुलकर चित्रण प्रस्तुत किया जनता के सामने। मठाधीशों और आश्रम के संचालकों ने इनके कपडे भी उतरवा लिये। एक कुर्ता भी पास न छोड़ा। साधना कराना तो क्या, साधना में व्यवधान डालने लगे। दयानन्द स्वाभिमानी थे, अपमान सहकर किसी का टुकड़ा तोड़कर पेट भरना इन्हें पसन्द न था। सच्चे प्रचार में भी लोगों ने ईंट–पत्थर इनके ऊपर बरसाये। साँप तक इनके ऊपर छोड़े गये, लाठियाँ लेकर लोग इनको पीटना चाहते थे। तलवार का भी प्रहार इन पर किया गया। इनकी पढ़ाई में (वेद–शास्त्र अध्ययन) लोगों ने बहुत व्यवधान डाले। भिक्षा लाकर अन्न पकाने में ही काफी समय दोनों वक्त खर्च होता था और साधना तथा अध्ययन (स्वाध्याय) के लिये पर्याप्त समय न बचता था। अतः इन्होंने सन्यास की दीक्षा ले ली, क्योंकि सन्यास दीक्षा लेकर व्यक्ति पके पकाये अन्न को खाने का अधिकारी हो जाता है, यही सोचकर सन्यास लिया तथा पूरा समय शास्त्र व वेद तथा साधना में खर्च किया, इसी बीच प्रचार भी जारी रखा परन्तु जिन्दगी में मुसीबत बहुत उठायी। लोगों के प्रपंच, छल, कपट, दम्भ, लोभ, पाखण्ड देकर वैराग्य परिपक्व होता चला गया और ईश्वरीय कृपा से महर्षि की उपाधि मिली।

इनके गुरु श्री विरजानन्द जी के बारे में तो इससे भी विपत्ति भरा इतिहास मिलता है। कदम–कदम पर दुखान्तक घटनाओं का शिकार रहे स्वामी विरजानन्द जी। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने जीवन में बहुत कष्ट उठाये। ६ वर्ष तक मांडले जेल में कैद रहे उस जेल का वर्णन यदि कोई सुन ले तथा जेल की प्रबन्ध व्यवस्था के बारे में सुने तो यही कहे कि ईश्वरीय कृपा पात्र कोई भक्त ही उस स्थिति में रह सकता है और ऐसे में ही "गीता रहस्य" विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

इन सब महान हस्तियों की आत्मकथायें यही कहती हैं कि दुखों और विपत्तियों ने इन्हे संसार की क्षणभंगुरता का गहरा अहसास कराया तथा ईश्वरीय साम्राज्य में वैराग्य के साथ प्रवेश कराया। ये सभी महान आत्मायें साधु संग करती रहती थीं। कोई भी अवसर सत्संग व प्रवचन का हाथ से नहीं जाने देती थी। शास्त्रों में इन सबकी गहरी रुचि थी। सहजोबाई के गुरुददेव सन्त श्री चरणदास जी तो सत्संग के दीवाने पाँच वर्ष से कम आयु में हो गये थे। पिता के देहान्त के बाद इनकी माता को बहुत सदमा पहुँचा परन्तु पिता मुरलीधर की

मृत्यु को तीन महीने ही हुए थे कि दादा प्रागदास जी व दादी यशोदा भी परलोक सिधार गये। घर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अन्त में माता कुन्जी देवी ने अपने मायके ले जाकर चरणदास का पालन-पोषण किया। परन्तु सत्संग की पक्की लत में चरणदास जी वैरागी हो गये। बचपन में मृत्यु जैसे आघात घर में देखकर इनका मन विरक्ति की ओर भागने लगा था। इतने उदाहरण यह बात सिद्ध करने के लिये काफी हैं कि सच्चे मन से जो भी व्यक्ति उसकी राह पर चला, ईश्वर ने किसी न किसी रूप व परिस्थिति में उसे प्रतिभवान बनाकर उसे अजर-अमर कर दिया। अतः यह तो कहना नितान्त गलत है कि हर किसी के पास इतना समय कहाँ जो विद्यारण्य तथा मधुसूदन जी की तरह अनुष्ठान कर डाले। गृहस्थी के कार्य करते हुए भी अथवा हर समय उसका चिन्तन मन में बनाये रहकर काम करते हुए भी परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है। राँका-बाँका भक्त गृहस्थी थे, इतनी भयंकर गरीबी भी हर कोई नहीं झेल सकता तो क्या उन्होंने इतने बड़े-बड़े तप जप किये थे ? नहीं, निष्काम कर्म से उनके नवीन संस्कार न बने तथा आत्म निवेदन चलता रहा, इसलिये भगवान के परम धाम को गये। हसीना-हमीद ने कोई जप-तप व अन्य अनुष्ठान नहीं किये थे, बस घर व बाहर के कार्य करती हुई श्री वृन्दावन की व नवलकिशोर मनमोहन की लगन में खोयी रही, आखिर वैराग्य इतना बढ़ा कि श्री वन जाकर ही समाधिस्थ हो गयी।

रबिया बसरी तुर्किस्तान की मुस्लिम फकीर ने जीवन में बालपन से ही अत्यन्त दुख झेले परन्तु ईश्वर को सच्चे मन से पुकारा करती थी। जिस धनी व्यापारी के हाथों रबिया को दुष्टों ने बेचा था, उस व्यापारी ने गुलाम रबिया पर तरह तरह के जुल्म ढाये। जगत में ईश्वर के अलावा उसे सान्त्वना देने वाला कोई न था। बेचारी जुल्मों से पीड़ित होकर घर से भागी तो ठोकर खाकर गिर पड़ी और दाहिना हाथ भी टूट गया। विपत्ति पर नयी विपत्ति, कातर होकर पुकारने लगी-ऐ मेरे मेहरबान मालिक ! मैं बिना माँ-बाप की अनाथ लड़की जन्म से ही दुखों के जाल में हूँ। दिन-रात कैदी की तरह मरती-पचती किसी तरह जिन्दगी बिता रही हूँ। रहा सहा हाथ भी टूट गया। कहो मेरे मालिक ! तुम मुझसे क्यूँ नाराज हो ? क्या कभी प्रसन्न नहीं होओगे ? तभी आकाशवाणी हुई- "बेटी ! तू चिन्ता न कर। तेरे सारे संकट शीघ्र ही दूर हो जायेंगे। तेरी महिमा पृथ्वी भर में छा जायेगी। देवता भी तेरा आदर करेंगे।" बस दर्द, पीड़ा सब भूल गयी। वापस मालिक के घर आ गयी, जुल्म सहती परन्तु अब मन प्रभु के चरणारविन्दों में था। काम करती मुख में राम नाम रखती। रबिया को प्रभु ने दासत्व से मुक्त कराकर हजारों व्यक्ति उसके दास बना दिये और मुक्तिपद पा गयी। भक्तिमती गजदेवी व हरदेवी ने कोई सन्यास नहीं लिया न योग साधना की। बस आत्मनिवेदन ही भक्ति का आधार रहा। गृहस्थ में सभी कुछ करती व चिन्तन प्रभु में रखती। गंगाबाई व यमुनाबाई को भीषण नर हत्या कांड में घर और कुटुम्ब से हाथ धोना पड़ा, वहाँ से भागी तो मनोहर दास ने सुन्दरता पर कायल होकर इस लालच से नृत्य गान सिखाया कि कमाई का साधन बढ़े और कला में निपुण कर राजा मानसिंह के यहाँ इनका

सौदा भी कर आया परन्तु ईश्वर को तो कुछ और मन्जूर था, जिस दिन मनोहर दास सौदा (दोनों कन्याओं का) पक्का करके आया तो इस भारी पाप से अगले दिन ही उसकी मृत्यु हो गयी। तब दोनों श्री वन के वृद्ध सन्त श्री परमानन्द दास जी के आश्रय में चली गयीं और भक्ति में लीन रहने लगीं परन्तु हाकिम अजीज बेग ने उन पर कुदृष्टि डाली, वहाँ पर भी प्रभु ने शेर रूप धारण करके उनकी रक्षा की। आँवेर के प्रसिद्ध महाराजा मानसिंह के छोटे भाई राजा माधोसिंह की पत्नी रत्नावती ने महलों में रहकर ही अपनी दासी को अपना गुरु बनाया तथा भक्ति में लीन हो गयी। राजा माधोसिंह ने उसकी कठोर परीक्षा ली। वहाँ पर भी भगवान श्री कृष्ण ने राजा द्वारा छोड़े गये सिंह के रूप में स्वयं प्रकट होकर उसकी रक्षा की।

भक्तिमती कर्मठीबाई का पितृकुल व पतिकुल दोनों पूर्ण रूप से समाप्त हो गये। दोनों पक्षों में कोई भी उसका अपना कहा जाने वाला न रहा। अतः बेचारी ने 'श्रीवन' आकर श्री हरिवंश चन्द्र जी से दीक्षा लेकर भक्ति में पग रखा। परन्तु न जाने क्यूँ भगवान भक्तों की कठोर परीक्षा लेते हैं, वे जहाँ भी रहते हैं, इनके इर्द–गिर्द हिंसक, दुष्ट व व्याभिचारी व्यक्ति का जाल बिछा देते हैं। कर्मठी बाई को भी सम्राट अकबर के भानजे हसनबेग ने अपनी कुदृष्टि का शिकार बनाया और दो कुलटा दूतियाँ सन्यासिनी के वेश में उसके पीछे लगाकर अपना शिकार बनाने को कुटिया में बुलाकर अन्दर से कुण्डी बन्द करके व्यभिचार करना चाहा। परन्तु धन्य है प्रभु ! जैसे ही हसनबेग ने उसको स्पर्श करना चाहा तुरन्त कर्मठी का रूप सिंह का बन गया व हसनबेग थर्राकर बेहोश हो गया। बाद में वह इनका भक्त बन गया।

सखूबाई की सास व पति ने उस पर इतने जुल्म ढाये कि हद नहीं। एक बार तो बेचारी को रस्सी से इतने जोर से बाँधकर खींचा कि उसके सूखे शरीर में गढ़े तक पड़ गये और भूखा प्यासा तो हर समय रखते ही थे। दीनानाथ, भक्तवत्सल भगवान स्वयं उसकी जगह उसी का रूप धारण करके बहुत दिनों तक बँधे रहे और उसे पण्ढरपुर के बैकुण्ठनाथ के मन्दिर में भेज दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि परीक्षा हर मार्ग में है।

सन्त तुकारामजी, रामतीर्थजी, दयानन्दजी, विवेकानन्दजी, श्री चरणदासजी, लोकमान्यजी तथा करमैतीबाई, कर्मठीबाई, रानी रत्नावती, श्री विष्णीबाई, यमुनाबाई, गंगाबाई, हरदेवी, गजदेवी, रबिया, हसीना, हमीदा, लल्लेश्वरीजी, सरस्वती जी, राँका–बाँका जी इन सभी की भक्ति व जीवन परिचय पर विहंगम दृष्टि डालकर यही सिद्ध होता है कि तपोमार्ग हो या भक्तिमार्ग अर्थात् निष्काम कर्म योग द्वारा संस्कार चक्र काटा जाये या ध्यान समाधि (जप–तप) द्वारा अनुष्ठान कर–करके संस्कार चक्र क्षीण किये जायें, दोनों मार्ग सरल हैं कहने में–कठिन हैं भुगतने में। संघर्ष, कष्ट, परेशानियाँ, परीक्षायें, यातनायें दोनों मार्गों में हैं।

(क्रमशः)

जीव का शिव से मिलन

लेखक : **राजेश कुमार सिंह** (बलिया)

हमारे मनीषियों की अवधारणा है कि जीवन को अज्ञानता (माया) रूपी पर्दा ढँकी रहती है जो जीव को शिव से मिलने में रुकावट होती है। जिसमें पहला पर्दा तो अस्तित्व भाव है जिसके अन्तर्गत चित्त तत्व, अहं तत्व और महत् तत्व आता है। दूसरा पर्दा है तीन कर्मगत भाव—जिसके अन्तर्गत फलाकांक्षा भाव कर्तृत्व अभिमान भाव और यन्त्रवत बोध भाव आता है। तीसरा पर्दा है पंच संस्कार गत—जिसके अन्तर्गत प्रत्यय मूलक संस्कार, आरोपित संस्कार, जन्मगत संस्कार, शैक्षिक संस्कार और समाजगत संस्कार आता है। चौथा पर्दा है– पंचकोष गत पर्दा– जिसके अन्तर्गत काममय कोष, मनोमय कोष, अतिमानस कोष, विज्ञानमय कोष और हिरण्यमय कोष आता है। पांचवा पर्दा है– इसमें पंच अतः वायुगत पर्दा और पंच बाह्य वायुगत पर्दा होता है: अतः वायुगत पर्दा में प्राणवायु, अपानवायु, समानवायु, उदानवायु, और व्यानवायु तथा बाह्य वायुगत पर्दा में नाग, कूर्म, कृकर, देवदन्त और धनंजय आता है। छठा षड्चक्रगत पर्दा है– जिसके अन्तर्गत मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर,अनाहत विशुद्ध और आज्ञा चक्र आते हैं।

ऊपर वर्णित ये माया (अज्ञानता) रूपी पर्दा जीव को शिवतत्व (गुरुतत्व) से मिलने में अवरोधक बनती है। मगर हमारे सामने पहला प्रश्न ये है कि शिवतत्व (गुरुतत्व) है क्या ? हमारे आदि पुरुषों का कथन है कि वह सत्ता हमारी आत्म सत्ता ही है। अपने अन्तःकरण में ही शिव का वास है अतः आत्म साक्षात्कार अगर हो गया तो शिव का साक्षात्कार अर्थात् गुरु तत्व से मिलन हो गया। वेद का कथन है, आत्मरति, ब्रह्मरति अर्थात जो आत्मा को जान लिया वो ब्रह्म को भी पा लिया।

गुरुतत्व (शिव तत्व) से मिलने के लिए जीव को सहस्त्र जन्म मरण की श्रृंखलाओं से गुजरना पड़ता है। जाने कितनी योनियों में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। तब जाकर इन पर्दों को फाड़कर जीव शिव से मिल पाता है। अर्थात प्राणाधार से मिलन होता है। अगर शिव जीव से दूर रहे तो फिर जीवन ही बेकार है। जीवन आधार के बिना जीवन व्यर्थ है। शिव के बगैर जीवन का यौवन मात्र रेगिस्तान–सा साबित होता है।

यह सत्य है कि बिना शिव के जीवन सूना है अर्थात नीरस है। कबीर, मीरा, नानक, रैदास जैसे नगण्य ही होंगे, जिनका शिव से मिलन हो सके होंगे। हममें से कितने लोग हैं जो उस शिव (गुरुतत्व) जीवन के देवता की खोज में लगे हुए हैं और लगे भी हैं तो कितने

सफल हो सके ? असफलता का कारण है क्या ? गलत दिशा में खोज या गलत प्रयास। ये भी सत्य है कि जीव शक्ति अपनी देवता शिव शक्ति की खोज में अहर्निश बेचैन दीखती है। जीवन शक्ति अपने प्रेम के उन्माद में पागल हो शिव शक्ति को अपने प्रेम पाश में पकड लेने हेतु विह्वल दीख पड़ती है। वह मंदिरों में, मस्जिदों में गिरिजाघरों में दौड़ लगा रही है कि कहीं शिव की झलक मिल जाए, प्राणों के आधार मिल जाए; मगर वहां उसे मिल नहीं पाता। उसको कुछ नहीं चाहिए वो अपनी शुद्ध बुद्धि खोकर एक नाम का रट लगा रही है मेरा योगेश, मेरा शिव मुझे मिल जाए।

पागलपन के बिना शिव की प्राप्ति हो भी नहीं सकती। रामकृष्ण परमहंस मां की खोज में पागल हो उठे थे, उन्हें अपनी सुध–बुध का कोई ठिकाना नहीं था। मां की खोज की व्याकुलता में समय का भान भी नहीं रहता था; समय का ज्ञान तब होता था जब शाम को आरती के लिए मंदिर मे घण्टी बजती थी। फिर क्या वो बिछड़े शिशु की तरह बिलख–बिलख कर रोने लगते, धरती पर लोट–पोट करने लगते। कहते मां ! मैं आपका पापी बेटा हूँ, अभागा बेटा हूँ जो तू मुझे दर्शन नहीं देती। तूने रामप्रसाद और अमुक अमुक को दर्शन दिये मुझे क्यों नहीं देती ? वे भाव–विभोर हो मा को सम्बोधित कर कहते माँ ! मेरा आज का समय भी तेरे दर्शन बगैर बेकार गया। वो मासूम बच्चे की तरह फूट–फूट कर रोने लगते, धरती पर लोट–पोट से उनका शरीर लहू–लुहान हो जाता। मां के प्रेमांचल में लिपट जाने की असह्य वेदना, मां को पाने की व्याकुलता चरमावस्था में जीव शिव से मिलने के लिए बेचैन।

कहते हैं गोपियां बालकृष्ण की दीवानी थी। बृजबाला रूपी जीव बाल कृष्ण रूपी शिव से मिलना चाहती है; उन सब में राधा का स्थान सर्वोपरि है। मगर राधा बेचैन हैं; उसको जलन है, ईर्ष्या है तो उस मुरली से। राधा खुद से पूछती है कि मोहन उस मुरली को जो बांस की बनी हुई है इतना प्यार क्यों करते हैं ? हर पल चौबीस घण्टे अपने साथ रखते हैं। कभी मधुर अधर से लगाये रहते हैं, तो कभी कोमलवत हाथ में ले लेते हैं, तो कभी कमर में लटका लेते हैं; आखिर ये कौन सी जादू कर दी है इन्हें ? वो मुरली से इसका राज जानना चाहती है, मगर उससे वो पूछे तो कैसे ? वो तो हर वक्त कन्हैया के साथ ही रहती है। अन्तर्यामी मुरलीधर राधा के मन की बात को जान जाते हैं और एक दिन बेसुध हो सो जाने का नाटक कर देते हैं, राधा इस अवसर का लाभ उठाकर उनके हाथ से मुरली ले लेती है और एकान्त में ले जाकर पूछती है, बहन मुरली ! तू कितनी भाग्यशाली है कि रात–दिन, सोते–जागते हर वक्त तू बाल कृष्ण के साथ ही रहती है, वो कौन सा गूढ़ रहस्य

है जिसके कारण तू उनसे एक पल भी अलग नहीं हो पाती ? मुरली बोली–बहन राधा! मैं तो तुच्छ बांस की बनी हुई हूँ वो भी देखो ऊपर नीचे मुझमें छिद्र ही छिद्र हैं, मैं खाली ही खाली हूँ, मेरे अन्दर है क्या ? मुझमें छुपाने के लिए कुछ भी नहीं है; मेरे पास रहस्य नाम की कोई चीज नहीं है। फिर कृष्ण जग जाते हैं और राधा के पास जाते हैं, कहते हैं राधिके ! यही तो मुरली के रहस्य की कहानी है; यह अंदर और बाहर से अपने को खाली कर चुकी है, इसे किसी तरह की चाह नहीं है।

जीव जब अपनी सभी प्रकार की अज्ञानता के पर्दे से अपने को बाहर कर देगा, प्रवृति, निवृत्ति सभी प्रकार की भावनाओं से स्वयं को मुक्त कर लेगा तभी वे शिव के सानिध्य की आनंदानुभूति से ओत–प्रोत हो जाएगा। जिस प्रकार सूर्य काले घनघोर बादल के सतहों से ढँका रहने पर हमारी आँखों से ओझल रहता है उसी प्रकार हमारी आत्म सत्ता माया अज्ञानता द्वारा सृजित नाना प्रकार के सतहों से घिरी रहने के कारण जीव से कोसों दूर दिखाई पड़ती है अर्थात हम आत्मानुभूति से कोसों दूर रहते हैं। हम विमूढ़ मृग की भांति नाभि में कस्तूरी रहते हुए भी बाह्य जगत में अत्र–तत्र भटकते रहते हैं। अज्ञानता अपनी मायावी आंचलों से हमारी आत्म सत्ता को ढँके हुए है। वो अंधकार में अन्धे की भांति भटका रही है। राधा को मोहन के बिना चैन नहीं, उसी तरह जीव को शिव के बिना भी स्थिरता नहीं।

हे जीव ! तू अपने को इधर–उधर क्यों भटका रहा है। तेरे शिव तो तेरे अन्तःकरण में छुपे हुए हैं अज्ञानता के पर्दा को जरा हटा और देख तेरा योगेश तेरा शिव तेरा गुरुदेव तेरे पास है। देर मत कर तू जीव को शिव से मिलने के लिए रास्ता प्रशस्त कर।

***

जो चित्त आत्मा में निवेशित हो गया है और जिसके सारे मल समाधि के द्वारा धुल गये हैं, उसके आनन्द का वाणी के द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, केवल अन्तःकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

ईश्वरीय प्रेम का स्वरूप

–रचना शर्मा (गंगापुर सिटी)

मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा सच है कि मनुष्य जब जीना आरंभ करता है तब उसका मन उत्साह आनंद और तरह–तरह की आकांक्षाओं से भरा रहता है। जीवन का प्रारंभिक भाग विशेषकर युवावस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मनुष्य को हर मोड़ पर अनेक परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। यह अवस्था उत्साह आनंद और आकर्षण से भरपूर होती है। जीवन में घटनाएँ घटित होती हैं और होकर बीत जाती हैं। घटनाओं का घटित होना और बीत जाना लगभग वैसा ही है जैसे मनुष्य जीवन धारण करता है जीवन जीता है मर जाता है। जीवन एक महासमुद्र है जिस प्रकार समुद में मनुष्य नाव लेकर किनारे–किनारे आ जाता है और उसे खेने का प्रयास करता है वैसे ही मनुष्य जीवन सागर में अपनी कागज की छोटी–सी नाव लेकर किनारे–किनारे आ जाता है यह सागर सब ओर उल्लास से भरा होता है ऐसा ही लहराता हुआ सागर हमारे जीवन में है।

यूँ तो हमारे शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में प्राकृतिक रूप से तालमेल बना है परस्पर सहयोग बना है लेकिन जब हमारा संबंध बाहरी दुनिया से जुड़ता है तो तालमेल बनाना पड़ता है। और इसमें सबसे महत्वपूर्ण और कारगर हाथ होता है "मन और आँखों का" हमारे जीवन का सारा कारोबार मन और आँखों पर निर्भर करता है यह बात बड़ी गहरी है और समझ में आ जाए तो छोटी भी है बात यह है कि अगर गुलामी का जीवन जीना हो तो हम अपने मन को मनमानी करने दें और उसके वश में रहे क्यों कि मन की गुलामी हमें और कई बातों का गुलाम बना देती है और हम उन सब बातों की गुलामी करने के लिए मन से मजबूर बने रहते हैं हमारा विवेक या तो नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है या लाचार।

अगर सिर्फ एक मन को वश में कर लिया जाए तो फिर हमें किसी की गुलामी न करनी पड़े। हमारे सभी काम मन के कहने के अनुसार नहीं बल्कि विवेक के अनुसार होने चाहिए। यदि एक मन को जीत लिया, मन को वश में कर लिया तो सभी इन्द्रियाँ अपने आप वश में हो जाती हैं और हम जितेन्द्रिय हो जाते हैं। यूँ तो मन का संबंध सभी इन्द्रियों से होता है और सभी इन्द्रियाँ मन के आदेश पर ही कार्य करती हैं पर मन का सर्वाधिक सम्पर्क आँखों से रहता है। मन और आँखों का इतना तालमेल रहता है कि आँखें जिसे पसन्द कर लें मन उसी की तरफ खिचने लगता है, उसे चाहने लगता है मन के अधिकाँश कार्य कलाप आँखों पर ही निर्भर करते हैं इसलिए मन के भाव आँखों से प्रकट होते हैं।

आँखें देखती भी है तो मन की भावना के अनुसार देखती हैं। किसी सुन्दर शरीर पर आँखें तीन तरह से दृष्टिपात करती हैं। त्यागी संयमी और भोगी पुरुष की नजर में सुन्दर शरीर ईश्वर की सुन्दर आकृति नजर आती है उसका मन अनायास ही कह उठता है "जिसकी रचना इतनी सुंदर है वो कितना सुंदर होगा।" दूसरी दृष्टि कामुक, भोगी पुरुष या स्त्री की होती है जिसकी नजर में सुंदर शरीर रमणीय या भोग की वस्तु दिखाई देता है लेकिन कुत्ते की नजर में वही सुन्दर शरीर माँस का ढेर दिखाई देता है। दरअसल चेहरा सुन्दर है या असुंदर यह चेहरे के नाक-नक्श पर नहीं अपितु देखने वाले की भावना पर निर्भर करता है। उसी तरह इंसान मन की भावना से इस जीवन को जिस ढंग से जीना चाहता है यह जीवन उसी रूप में दिखाई देता है।

हमारी इस मानवीय देह को अनेकानेक दुःखों को भोगना पड़ता है। यह संसार दुःखालय है जिस व्यक्ति ने इस संसार में जन्म लिया है उसका दुःखों से पीड़ित होना अवश्यम्भावी है। परन्तु जब हम अपना सम्पूर्ण ध्यान इन सांसारिक वस्तुओं से हटाकर एकमात्र परमेश्वर के चिंतन में लगा देते हैं उस अविनाशी परमतत्व की तरफ अपने मन को आकृष्ट करके उसके प्रेम में पूर्णतः रंग जाते हैं तो हमारा जीवन इस दुःख के महासमुद्र से निकलकर सुख का अनूठा आनंद प्राप्त करता है जिस प्रकार दिन-भर के थके हारे व्यक्ति को वृक्ष की शीतल मन्द बयार में अपार प्रसन्नता एवं आनंद की अनुभूति होती है उसी प्रकार परमात्मा के सान्निध्य में परमानन्द की प्राप्ति होती है। परमात्मा अपने प्रेमी भक्त को नित्य प्रति-दिन प्रेम रूपी अमृत के प्याले का पान करवाता है जिसे प्रेमाश्रय पीकर परमानन्द की प्राप्ति करता है।

यह संसार क्षणभंगुर है एकमात्र परमेश्वर ही शुद्ध प्रेम स्वरूप है अतः ईश्वरीय प्रेम ही सच्चा प्रेम है जो परमेश्वर की भाँति अगाध होता है ऐसे प्रेम में द्वैतभाव नहीं होता। एक प्रेमी भक्त अपने प्रियतम ईश्वर में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विसर्जित कर देता है जैसे-जैसे उस परमतत्व के प्रति प्रेम बढ़ता है, उस प्रेमी की तड़प क्रमशः तीव्र होती जाती है। उस प्रेमी भक्त को स्वर्गीय लोकों का वैभव संतुष्ट नहीं कर पाता, अपने प्रियतम आराध्य के दर्शन बिना उसको चैन नहीं पड़ता।

एक प्यासे चकोर पक्षी की भाँति वह दिन-रात अपने आराध्य के दर्शन को व्याकुल रहता है। परमात्मा का सच्चा भक्त जब पूर्णतः परमेश्वर के रंग में रंग जाता है तो उसे सांसारिक सुख तुच्छ व क्षणिक लगने लगते हैं फिर हर-पल क्षण उसे अपने परमेश्वर अपने आराध्य के दर्शनों की प्यास रहती है। कैसे किस तरह उन परम दयालु के दर्शन करूँ ऐसा कौन-सा काम करूँ जिससे की करूणा के सागर मुझ दीन-हीन पतित पर रीझ जाए और

अपना वरद–हस्त मेरे सिर पर रखें उस प्रेमी भक्त के समस्त कार्यकलाप केवल उस परमात्मा की प्रसन्नता के लिए ही होते हैं। अपने आराध्य के दर्शन की तीव्र लालसा मन में लिए वह प्रतीक्षारत रहता है। एक सच्चे ईश्वरीय प्रेमी की धारणा होती है प्रभु आप तो महान हैं विराट हैं इस जन्म में तो क्या जन्म–जन्म की प्रतिज्ञा करके भी आप दर्शन दें तो कम ही प्रतिक्षा करनी पड़ी। प्रभु कभी तो आप मिलेंगे कितना ही समय लग जाए। समय की क्या बात प्रभु मेरी पात्रता ही क्या है जो आप दर्शन देंगे, वह तो आपकी दयालुता है आप अपनी करुणा से पिगलित होकर दर्शन देंगे। यदि आप दर्शन न देंगे तो भी हम शिकायत ही क्या कर सकते हैं हम तो आपके दर के भिखारी हैं दर्शनों की लालसा मन में लिए प्रतीक्षारत हैं।

"तेरे द्वार पर पड़े रहे हैं
पड़े रहने से ही काम होगा।
कभी तो जागेगी किस्मत मेरी
कभी तो तेरा दीदार होगा।।"

बस इसी भावना को मन में लिए वह प्रतिदिन एक नई उमंग व उत्साह लिए उस परमेश्वर को रिझाने में संलग्न रहता है। परमात्मा के उस सच्चे प्रेमी भक्त को इस प्रतीक्षा में भी एक नया उमंग व उत्साह बना रहता है कि आज तो मेरे प्राणाधार, मेरे परमेश्वर मुझ अनाथ पर कृपा करेंगे। आज तो हमारा मिलन निश्चित ही होगा। बस यही उमंग व उत्साह रूपी आनंद लिए वह परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहता है। तब एक दिन उस विरह रूपी रात्रि का अंत होकर मिलन की सुखद ठण्डी छाँव भी आती है और उस करुणानिधान की कृपा रूपी बरसात उस भक्त पर बरसने लगती है।

प्रेमी भक्त के हृदय में अपने आराध्य के दर्शन की लालसा इतनी तीव्र होती है कि निरंतर उन्हें निरखते रहने पर भी उनके दर्शन की प्यास नहीं बुझती। वह दिन रात अपने ईष्ट के दर्शन करता रहे मगर उसके मन में यही लालसा बनी रहती है कि उसके आराध्य एक पल को भी उससे अलग न हों। मन और इन्द्रियों की हलचल से परे पूर्ण तन्मयता के साथ परमात्मा के ध्यान में विभोर हो जाना ही गहरे प्रेम की असली निशानी है, इस साधन की परिणति परमात्मा के पूर्ण मिलाप से होती है। इस मिलाप की मिठास का अनुभव अद्भुत होता है। सच्चा भक्त इस ईश्वरीय प्रेम अमृत को नित नई प्यास के साथ आनन्द मग्न हो पीता है पर बाहर से कोई दिखावा नहीं करता।

सदा साथ रहने वाले परमात्मा के संरक्षण में उस प्रेमी भक्त को किसी का भय नहीं रहता और वह सभी आत्मिक ज्ञान और आनंद का स्वामी बन जाता है; परमात्मा के प्रेम की

छोटी–सी चिनगारी उसकी सभी रूकावटों को जलाकर खाक कर देती है और जब प्रेमी भक्त और प्रियतम ईश्वर के बीच का परदा हट जाता है तो भक्त अपने आराध्य का प्रत्यक्ष दीदार करता है।

तीव्र विरह ही सच्चे प्रेम की राह है, सच्चा प्रेमी भक्त, विरहाग्नि की प्रबल ज्वाला में जलता रहता है और अपने आराध्य के दर्शन पाने के लिए तरस–तरसकर अत्यंत आर्तभाव से आँसू बहाता है। अपने आराध्य के दर्शन बिना उसका जीवन भार हो जाता है। उनकी अवस्था वैसी ही होती है जैसे जल के बिना मछली की, स्वाति बूँद के बिना पपीहे की और माता के दूध के बिना शिशु की होती है। दीपक पर जलने वाले पतंगे के समान और शिकारी के बाजे पर जान देने वाले कस्तूरी मृग के समान वह किसी भी क्षण अपने प्राण न्यौछावर करने को तत्पर रहता है। ऐसे ही विरहीजन का परमात्मा से मिलाप होता है। जो प्रेम की आँच को सहता है वही अपने आराध्य (प्रियतम) के सुखद मिलाप का आनंद उठाता है। वास्तविकता तो यह है कि इस अनोखे प्रेम की क्रीड़ा में प्रेमी और प्रियतम की भूमिका बदल जाती है। प्रेमी भक्त भगवान (प्रियतम) बन जाता है और भगवान ही उसका प्रेमी बन जाता है।

सांसारिक जीवन में रहते हुए अगर हमारा सच्चा प्रेम उस अविनाशी परमात्मा से हो गया तो हमारा मनुष्य जीवन लेना सार्थक हो जाता है क्योंकि उस अविनाशी परमात्मा से वास्तविक प्रेम करके हम उसको प्राप्त कर सकते हैं। जिसने भी उस परमात्मा से सच्चा प्रेम कर लिया और अपने पंचभौतिक शरीर को उस परमतत्त्व को अर्पित कर दिया वही मनुष्य जीवन सार्थक हो सकता है। अतः हमें अपने–आपको उस अविनाशी परमतत्व के प्रेम–रूपी रंग में रंगना चाहिए जो अनन्त काल से अजर अमर है जिसकी कीर्ति को प्राचीनकाल से सदियों से ऋषि–मुनि गाते आए हैं वही परमात्मा हमें सच्ची राह दिखा सकते हैं। जब हम पूर्णतः उस परमात्मा के रंग में रंग जाऐंगे तो हमारे मन से अज्ञान रूपी अँधकार पूर्णतः नष्ट हो जाएगा और हमारे हृदय के अंदर ज्ञान–भक्ति और वैराग्य की तीव्र ज्वाला उत्पन्न होगी। जिस प्रकार एक दीपक अपने प्रकाश से चारों ओर से घिरे हुए अंधकार को हटा देता है उसी प्रकार परमात्मा के प्रेम में डूबने से हमारे अन्तर्मन से अज्ञान रूपी अंधकार छँट जाता है तथा ज्ञान रूपी सूर्य का उदय हो जाता है।

हमारे जीवन की सार्थकता उस परमात्मा को प्राप्त करने में है। अतः सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति त्यागकर अविनाशी अव्यापक परमसत्ता ईश्वर के प्रेम को सच्चा प्रेम मानकर उनके सान्निध्य की लालसा हमारे मन में प्रस्फुटित करनी चाहिए तभी यह मनुष्य जीवन सार्थक माना जा सकता है।

***

श्री जगरनाथ परिवार की सहायता

प्रेषक–**केशव देव उपाध्याय**, वाराणसी

आदरणीय भाई श्री जगरनाथ शर्मा जी, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सँवाई (आगरा) के आध्यात्मिक तेज से प्रभावित क्षेत्र (श्री सिद्ध गुफा से मात्र लगभग तीन किलो मीटर की दूरी पर स्थित) ग्राम घरैरा के मूल निवासी थे। वे बी०एच०ई०एल० (भारत हेवी इलेक्ट्रीकल्स लिमिटेड) में अधिकारी के पद पर कार्यरत थे। आज से कुछ वर्ष पूर्व उनकी जीवन ज्योति, आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के अखण्ड ज्योति में समाहित हो गयी। उनकी धर्मपत्नी के अलावा परिवार में उनके दो पुत्र और एक पुत्री हैं। उनका बड़ा पुत्र श्री कृष्ण कुमार शर्मा आई० सी० आई० सी० आई० बैंक में कार्यरत है। उनकी पुत्री कुमारी इन्दू शर्मा एम० ए० की छात्रा है, तथा पुत्र मोनू बी० एस० सी० की परीक्षा अच्छे अंकों से पास कर विक्षिप्त (मानसिक रूप से पागल) हो गया। मुखिया श्री जगरनाथ शर्मा के परलोकवासी हो जाने के बाद उनके परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी। इसी बीच उनका पुत्र चि० मोनू शर्मा विक्षिप्त हो गया। जिसके ईलाज के लिये अनेकानेक योग्य चिकित्सकों एवं वैद्यों को दिखाया गया। उसके इलाज में परिवार का काफी पैसा खर्च होगया। परन्तु उसकी तबीयत में रंच मात्र भी बदलाव नहीं आया। उनके परिवार के सदस्यों ने घर का पैसा समाप्त हो जाने पर पचास हजार रूपया, ब्याज पर कर्ज लेकर चि० मोनू का इलाज करवाया परन्तु बच्चे की हालत ज्यों की त्यों बनी रही। श्री शर्मा जी के परिवार ने, श्री मोनू को लाइलाज मानकर पैसे के अभाव में इलाज बन्द कर दिया।

इन्हीं परिस्थितियों में हमारे आदरणीय गुरुभाई, एकनिष्ठ गुरुभक्त एवं आराध्यदेव जी के लाडले शिष्य श्री मानीक चन्द शर्मा जी, जो इस परिवार के रिश्तेदारी में भी आते है की मुलाकात उपरोक्त परिवार से हो गयी। श्री प्रभु परिवार के सदस्यों की ऐसी दशा तथा उनका कष्ट देखकर उन्हें महान हार्दिक वेदना हुयी। उन्होंने मन ही मन आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के भव–भय हारी चरण कमलों का चिन्तन किया, एवं फिर बोले कि मोनू को सँवाई धाम पर ले जाओ। उसे धाम पर कुछ दिन निवास कराने की भावना से जाओ। वहाँ जाकर चि० मोनू को सूत्र नेती कराओ नाक से दूध पिलाओ एवं तदुपरान्त सुबह–सायं नित्य नियम से जीवन–तत्त्व–साधन कराओ। यदि ऐसा किया जायेगा तो यह अवश्य ठीक हो जायेगा, मेरे मन में बार–बार यह धारणा आ रही है। उन्होंने चि० मोनू के

परिवार वालों को सलाह दी कि इलाज कराके आप लोग निराश ही हो गये हैं, एक बार ऐसा भी करके देख लेवें। अपने दरबार की यह परम्परा रही है एवं अब तक इसका स्पष्ट उदाहरण देखने को मिलता रहा है कि अपने शिष्यों के परोपकारी संकल्पों को करुणा सागर आराध्यदेव अवश्य-अवश्य पूर्ण करते ही हैं। इस बार भी वही हुआ एवं आदरणीय भाई की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन दुखित परिवार द्वारा किया गया, एवं फल स्वरुप चि० मोनू पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। इस परिवार की श्री गुरुदेव के श्री चरणों में श्रद्धा का विकास हुआ। चि० मोनू की बीमारी में लिये गये कर्ज का ब्याज अविरल बढ़ना इस परिवार की चिन्ता का अब मुख्य विषय बन गया था। परिवार के पास किसी भी प्रकार पचास हजार रूपया नहीं जुट पा रहा था कि एक मुस्त कर्ज लौटाया जा सके, एवं कर्ज न लौटाने पर ब्याज का बढ़ना स्वाभाविक ही है। कर्ज का पैसा तो कई बार में लिया गया था परन्तु उसकी शर्त यही थी कि कर्ज एक मुस्त ही लौटाया जायेगा।

परिवार के सभी सदस्य श्री सद्गुरुदेव भगवान की नित्य ही सुबह-सायं सामूहिक आरती किया करते थे एवं आरती के बाद श्री प्रभु चरणों में मानसिक रुप से यह प्रार्थना करते थे कि प्रभो ! कर्ज का बोझ परिवार से यथाशीघ्र हटाने की कृपा करें। अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतार दिवस चैत्र शुदी नौमी के ठीक एक महिने पूर्व एक अलौकिक घटना, रहस्यमय ढंग से घटित हुयी जिसने सभी कर्ज पचास हजार रुपये तथा पाँच हजार रुपये ब्याज के अर्थात पचपन हजार रुपये, एक मुस्त चुकता करा दिये, जिसका वर्णन इस प्रकार है-

कुमारी इन्दू शर्मा, अपनी फीस का पैसा लेकर अपने कालेज पढ़ाई करने जा रही थी। स्कूल जाने वाली मुख्य सड़क की पटरी पर एक साधू वेशधारी आदमी को उसने बेहोश पड़े हुये देखा। उस रास्ते से गुजरने वाला प्रत्येक राही, उस बेहोश पड़े साधु वेषधारी आदमी को देखता एवं फिर अपनी अगली यात्रा आरम्भ कर देता। कुमारी इन्दू शर्मा ने बेहोश आदमी को देखा तो उसके पास अपनी सहेलियों के साथ चली गयी। उसने उस बेहोश आदमी को नजदीक से देखा तो उसकी श्वाँस चल रही थी। उसने सहेलियों से कहा कि बेचारा साधू है, बेहोश पड़ा है; इसका इलाज कोई क्यों करायेगा ? और बिना इलाज के यह बेचारा साधु मृत्यु को ही प्राप्त हो जायेगा। उसकी सहेलियाँ भी आस्तिक वृत्ति की थीं, परन्तु उन सब के पास, पैसा नहीं था। अतः उन सब ने कुमारी इन्दू को अपनी स्थिति से अवगत कराया एवं सहायता करने में असमर्थता दिखाई। कुमारी इन्दू शर्मा ने कहा कि आप सिर्फ इन्हें नर्सिंग होम तक ले जाने में हमारी सहायता करें, उसके बाद मैं स्वयं देख लूँगी। सुश्री इन्दू अपनी सहेलियों की सहायता से उस साधू को सगड़ी पर लादकर नजदीक के नर्सिंग

होम पहुँची एवं वहाँ उपचार आरम्भ करवा दिया। उपचार की प्रारम्भिक अवस्था में डाक्टरों ने पाँच सौ रुपया जमा करने को कहा। लगड़ी वाहन का भाड़ा देने के बाद सुश्री इन्दू के पास तीन सौ अस्सी रुपये थे, उसने तीन सौ रुपये जमा कर दिये एवं कहा कि आप लोग इनका समुचित इलाज करें, मैं घर से और पैसा लेकर अभी आ रही हूँ। अब तक महात्मा होश में आ गये थे एवं इन्दू की सहेलियाँ अपने कालेज चली गयी थीं। जब महात्मा जी ने इन्दू को डाक्टरों से यह कहते सुना कि आप लोग समुचित इलाज करते रहिये, मैं घर से पैसा लेकर आ रही हूँ तो महात्मा जी ने इन्दू शर्मा को ईशारे से अपने पास बुलाया एवं उनके हाथ में एक प्लास्टीक की पन्नी जिसमें बहुत थोड़ा सामान रखा था, देते हुये कहा कि इसे अपने घर लेती जाओ; हमारा प्रसाद है। सुश्री इन्दू शर्मा ने यह कहते हुये उसे लौटाना चाहा कि अपने श्री गुरुदेव के अलावा, हम लोग किसी अन्य का प्रसाद नहीं ग्रहण करते; तो उस महात्मा ने कहा कि बेटी ! इसे अपने घर पर रख देना। इसमें खाने का सामान नहीं है। महात्मा के इस अनुरोध परक आदेश पर इन्दू वह पन्नी लेकर अपने घर पहुँच गयी, पूजा घर में उसे रख दिया एवं उसके बाद पूरी घटना को अपनी माँ से बतलाया। माँ ने कहा कि बेटी तुम इतनी पढ़ी-लिखी हो एवं तुम्हें घर की आर्थिक स्थिति की जानकारी है, फिर भी तुमने यह जहमत (बिना स्वार्थ का कार्य) क्यों मोल ली। सुश्री इन्दू ने अपनी माँ से प्रार्थना की कि माता जी, मुझे घर की आर्थिक स्थिति की खूब अच्छी प्रकार से जानकारी है, परन्तु महात्मा जी की स्थिति देख कर मुझे इतनी दया आयी कि मुझे किसी प्रकार इनकी प्राणरक्षा कर लेनी चाहिये। उनकी प्राणरक्षा ही हमारा मुख्य उद्देश्य था, वह हो गया। अब किसी प्रकार कहीं से आप दो सौ रुपये जुटा कर देने की कृपा करें, वरना नर्सिंग होम वाले उनका इलाज हमको वहाँ पहुँचने में ज्यादा देर हो जायेगी तो बन्द कर देंगे। माँ ने कहा कि इस बार तो पैसा दे दे रही हूँ, परन्तु इसके बाद फिर कभी इस प्रकार की आर्थिक क्षति का कार्य कभी मत करना। माँ से दो सौ रुपये प्राप्त कर सुश्री इन्दू देवी तीव्र गति से नर्सिंग होम पहुँच गयी एवं इसके बाद उस बेड के पास पहुँच गयी, जिस बेड पर महात्मा जी को इलाज के लिये लिटाया गया था एवं जहाँ पर उनका इलाज हो रहा था। सुश्री इन्दू शर्मा को वहाँ महात्मा जी नहीं मिले। इन्दू शर्मा ने सोचा, कि हो सकता है किसी परीक्षण के लिये किसी विशेष कक्ष में ले जाये गये हों। बारी-बारी से इन्दू ने हास्पीटल नर्सिंग होम का हर परीक्षण कक्ष ढूँढ लिया परन्तु महात्मा जी कहीं नहीं मिले। जब उसने घबड़ाकर महात्मा जी की जानकारी नर्सिंग होम के कर्मचारियों से जाननी चाही कि वे महात्मा जी जिनका इलाज चल रहा था, कहाँ गये तो पता चला कि महात्मा जी नर्सिंग होम के अपने बेड से उठे एवं बिना किसी से पूँछे नर्सिंग होम के बाहर चले गये।

सुश्री इन्दू शर्मा ने जब विधिवत् इन्क्वायरी किया तो पता चला कि वे महात्मा जी तो उसके जाने के मात्र पाँच मिनट बाद अपना इलाज डाक्टर–कम्पाउन्डरों से बन्द करा कर नर्सिंग होम से बाहर चले गये। इन्दू लगभग आधे घण्टे तक इन्तजार करने के बाद अपने घर आ गयी। उसने अपनी आदरणीया माता जी से अब बतालाया कि महात्मा जी ने परिवार के लिये प्रसाद दिया है। माँ ने कहा कि प्रसाद कहाँ रखा है ले आओ। इन्दू शर्मा दौड़ी–दौड़ी पूजा कक्ष में गयी एवं वहाँ से महात्मा जी द्वारा प्रसाद स्वरूप दिया गया पालीथिन की थैली, माता जी को दिखाने की नियत से उठाना चाहा। महात्मा जी ने जब प्रसाद की थैली दी थी तो उसका वजन दस ग्राम से ज्यादा नहीं था परन्तु इस बार थैली का वजन सौ ग्राम से ज्यादे लगा। उसने जब उत्सुकतावश थैली को खोला तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, एवं उसकी आँखें खुली की खुली रह गयी। चन्द मिनट तो वह किं कर्तव्य विमूढ़ भाव से मूर्तिवत खड़ी रही एवं फिर जोर से तेज आवाज में चिल्लायी कि माँ ! दौड़ के आओ देखो ! यह क्या हुआ है। उसकी माँ दौड़ी हुयी पूजा घर में गयी परन्तु वहाँ सब कुछ सामान्य देखकर उनका मन शान्त हो गया एवं उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री इन्दू शर्मा से कहा कि इतनी घबड़ाहट में क्यों मुझे बुलाया ? उसने थैली को जिसे वह खोलकर उसके दोनों शिरे अपने दोनों हाथों से पकड़ी थी, अपनी माँ को दिखलायी। उसे देखने के बाद उसकी माता जी की आँखें खुली की खुली रह गयी।

आप को भी यह जानकर महान आश्चर्य होगा कि प्लास्टीक की आधी बधी पन्नी में एक सौ पाँच–पाँच सौ की नोटों की एक बिल्कुल नयी गड्डी तथा पचास रुपये की एक बिल्कुल नयी गड्डी से भरी थी। उसकी माँ ने प्रश्न किया कि बेटी ! जब महात्मा जी ने यह पन्नी प्रसाद रूप में दिया था, तो क्या तुमने इसे उस समय नहीं देखा था ? इन्दू शर्मा ने अपनी माता से बतलाया कि उस समय मेरा मन महात्मा जी के इलाज की चिन्ता में था, अतः मैंने समुचित प्रकार से खोलकर तो नहीं देखा परन्तु हाथ से स्पर्श कर उसे जानना चाहा तो ऐसा आभास हुआ कि उसमें किसी पुष्प की दस बारह पंखुड़ियाँ या पत्ते रखे हुये हैं। उस प्लास्टीक की पन्नी में बिल्कुल करेन्सी वाले पचपन हजार रुपये रखे थे। साथ ही ब्याज के साथ कर्ज की राशि इस माह में इतनी ही आ रही थी। परिवार के सभी सदस्य इस अलौकिक कृपा से इतने आह्लादित थे कि उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही थी एवं सबका कण्ठ अवरुद्ध हो गया था। स्थिति सामान्य होने में करीब आधे घन्टे का समय लग गया। उसके बाद अखण्ड ज्योति जलायी गयी; शुद्ध फलाहारी मिठाई मँगाकर भोग लगाया गया एवं लगातार तीन घन्टे तक संकीर्तन किया गया। उसके बाद सामूहिक आरती

की गयी एवं तदोपरान्त परिवार के सभी सदस्यों ने प्रसाद खाकर आध्यात्मिक आनन्द का लाभ उठाया। उसके बाद बड़े लड़के श्री कृष्ण कुमार शर्मा ने अपनी आदरणीय माता जी के साथ, उस अलौकिक पैसों की थैली के साथ, उस आदमी के घर की यात्रा आरम्भ की जिससे कर्ज लिया गया था एवं वहाँ पहुँचकर ब्याज के साथ कर्ज एक मुश्त चुकता कर दिया।

इस प्रकार के अलौकिक कृपा की घटनायें अपने इस सिद्धयोग दरबार के अलावा, अन्य धार्मिक सम्प्रदायों में मिलना असम्भव सा ही है। आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की ऐसी अनेक कृपाओं को स्मरण कर मन स्वतः ही गुन–गुनाने लगता है:–

कब क्या करोगे है प्रभो: यह जानते हो तुम सभी।
ये ठाट है जितने जगत के, ठानते हो तुम सभी।।
गुरुवर तुम्हारे कार्य सारे, सब प्रकार विचित्र हैं।
सब नेति-नेति पुकार कर, गाते पवित्र चरित्र हैं।।

* * *

श्री सिद्धगुफा तक पदयात्रा

योग योगेश्वर प्रभु जी रामलाल जी महाराज के प्राकट्य महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए श्री रामनवमी पर आगरा स्थित शक्तिपात गुफा से भक्त जनो का एक जत्था पदयात्रा करता हुआ सँवाई धाम पहुँचा और श्री सिद्धगुफा के अलौकिक दर्शन प्राप्त किये। भक्तजनों का यह पदयात्री समूह प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे आगरा से चला और पूर्वाह्न साढ़े दस बजे सँवाई आश्रम पहुँच गया।

पदयात्रियों में प्रमुख थे श्री बलवीर सिंह एडवोकेट व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी, आगरा के अभियोजन अधिकारी श्री शैलेन्द्र सिंह, तुलसी बाग निवासी श्री विजयसिंह एवं उनके सुपुत्र संजय सिंह। श्री बलवीर सिंह की सपत्नीक यह चतुर्थ पदयात्रा थी। श्री प्रभु जी एवं श्री सद्गुरुदेव जी के प्रति अपने भक्ति एवं श्रद्धा भाव को व्यक्त करने का यह एक अनूठा उदाहरण है, जो निश्चित ही श्लाघनीय है।

–संपादक

सहारनपुर में गुरुदेव का वेदी विराजमान समारोह

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

जब से सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का अभय श्री चरणारविन्द की मुझे प्राप्ति हुई तब से निरंतर यह शुभ भाव मेरे मन में बने रहा करते थे कि महाप्रभु श्री रामलाल जी की चरण रज और शक्ति से परिपूरित एवं श्री गोपालानन्द जी की दीक्षा भूमि अपने सहारपुर नगर में श्री महाप्रभु जी का एक योग आश्रम अवश्य होना चाहिये। जब श्री गुरुदेव जी के चरणों में हमने यह बात रखी तो उनका भी यही आदेश प्राप्त हुआ कि "लल्ला चाहते तो हम भी हैं कि सहारनपुर में एक योग आश्रम हो बस उनके इसी संकल्प ने रंग दिखा दिया। सन १९९२ ई० में आश्रम के लिये भूमि क्रय की गई। यह समय श्री गुरुदेव जी के महाप्रयाण के बाद का समय था। सभी शिष्य गण अपने प्यारे गुरुदेव जी के देह त्याग का दुख भूल नहीं पाये थे ऐसे समय में ही महाप्रभु श्री चन्द्र मोहन जी की दया दृष्टि हुई और भाई नरेश वर्मा और इस दास ने आश्रम की आगामी रूपरेखा तैयार की और आश्रम का नाम रखा "परमयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन प्रभु योग प्रचार आश्रम"। भाई नरेश ने मुझसे कहा कि आश्रम के बैनामे में आपका नाम भी रखना है मैंने इसकी स्वीकृति नहीं दी और मैंने बड़े गुरुभाई ला० ब्रजलाल का नाम आश्रम प्रबन्धक में दे दिया। आश्रम की नींव श्री गुणपूर्णिमा के दिन हमने आचार्य श्री चन्द्र हास जी के द्वारा रखवाई।

सद्गुरु कृपा से गुरुभवन के निर्माण व देखरेख व बाद मे आरती पूजा की सेवा इस दास को गुरु प्रसाद रूप में प्राप्त हुई। गर्मी सर्दी की विकट परिस्थितियों में भी गुरु कृपा से यह दास निरंतर प्रयत्नशील रहा। वर्षा के समय आश्रम पहुँचने वाले मार्ग में घुटनों तक पानी हो जाता था तब भी निरंतर सेवा जारी रही। रात दिन के अथक प्रयास से नौ दस माह में आश्रम पूरा बनकर तैयार हो गया। वरिष्ठ गुरुभाई जुगमन्दर दास जी जब आश्रम देखने आये तो आश्चर्य चकित हुये। विकट परिस्थिति में भी इतनी शीघ्र गुरु भवन बनने का श्रेय एवं बधाई इस दास को प्रेषित की। गुरु भवन के साथ ही एक शिवालय भी निर्माण कराया जिसमें शिव परिवार लाला ब्रजलाल, द्वारा, गणेश प्रतिमा भाई सन्तोष पुरी द्वारा और शिवलिंग इस दास द्वारा आश्रम को प्राप्त हुये इनकी स्थापना श्री राम नवमी जन्मोत्सव पर महात्मा अमीरानन्द जी द्वारा कराई गई। हमारे मित्र प्रिय अजय अग्रवाल ने हमारे कहने पर आश्रम में ६००००–७०००० की सेवा करके दरबार में मार्बल, शिव मन्दिर मार्बल फर्श दरबार आदि समस्त बिजली की फिटिंग, समस्त गुरु भवन में रंग रोगन जगदम्बा की बड़ी प्रतिमा

आदि कार्य कराये।

आश्रम निर्माण के समय अनेकों चमत्कारिक घटनायें घटती रहीं सभी का विवरण यहाँ नहीं दिया जा सकता केवल एक घटना श्रद्धा संवर्धन के लिये दे रहा हूँ।

ग्राम में गुरु दरबार का निर्माण होने वाला था तो मिस्त्री ने हमसे पूछा दरबार बनाना है उसका नक्शा दे दीजिये। मुझे एकदम श्री गुरुचरणों का स्मरण हो आया। हमने मिस्त्री से कहा यह तो हम अपने श्री गुरुदेव जी से पूछ कर ही बताते पर अब यह कैसे सम्भव है ? मिस्त्री बोला तो आप उनसे पता करके बता दीजिये उसकी बात को सुनकर हमारी आँख में पानी भर आया। श्री गुरुदेव जी के महाप्रयाण का जख्म गहरा और ताजा ही था। मैंने अपने मन में विचार करके दरबार का नक्शा बना दिया। जब श्री गुरुदेव जी का सिंहासन बनकर तैयार हो गया तो अचानक वहाँ पर दो ढाई मीटर लम्बा काला सर्प बड़ी तीव्र गति से सतसंग हाल के अन्दर आया और सीधा नवनिर्मित सिंहासन पर जाकर कुण्डली मार कर फन फैला कर बैठ गया। हम पांच छह लोग वहाँ थे और हाल के अन्दर खड़े डर के कारण कांप रहे थे। पता नहीं इतना भयंकर नाग कब किस पर आक्रमण कर दे ? पर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। मिस्त्री लोग बोले इसे मार दें। हमने सर्प को न मारने की हिदायत दी और बता दिया कि यह स्थान जिनका बन रहा है उनके आस पास तो सर्प ही रहते हैं। हम यह बात कर ही रहे थे और वह वहीं सिंहासन पर बैठा फन हिला रहा था और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे जो सिंहासन बनवाया गया है, उसे पास कर दिया गया है। जो बात मेरे मन में आई थी कि श्री गुरुदेव होते तो उनसे पूछ कर करते उन्होंने अपनी स्वीकृति का प्रमाण तत्काल दे दिया और अपनी विभूति को यहाँ प्रकट करके स्वीकृति प्रदान कर दी। उसके बाद वह नाग वहाँ से उतर कर बिना किसी को कुछ कहे शिव मन्दिर में चला गया और कुछ देर वहाँ रुक कर आश्रम से बाहर निकल कर ओझल हो गया।

आश्रम निर्माण के समय कुछ श्रद्धालु गुरुभाईयों की सेवा समय–समय पर गुरुभवन को प्राप्त हुई। जिस समय मैं आश्रम की सेवा में था उस समय आश्रम के उत्थान के प्रति जो–जो संकल्प मन में आते थे वह सब कालान्तर में पूरे हुये और हो रहे हैं। लाला रोशनलाल के सहयोग से समीप का प्लाट खरीद कर भण्डारे के लिये भवन निर्माण किया गया। आश्रम के दूसरी ओर का १७० गज का प्लाट भाई सन्तोष पुरी द्वारा आश्रम को दान कर दिया गया। आगे चलकर आश्रम में श्री महाप्रभु जी एवं श्री गुरुदेव जी के पाषाण विग्रह स्थापित करने की बात चली तो बड़ी गुरु बहिन इन्द्रवती (जो मुझे पुत्र वत स्नेह करती थी) भाई जगदीश खुराना, भाई प्रमोद शर्मा आदि की बड़ी सेवा आश्रम को प्राप्त हुई और अब श्री गुरुदेव जी के विग्रहों की स्थापना में भी सभी गुरु भाई बहनों का सहयोग आश्रम को प्राप्त हो रहा है।

वैशाख सुदी अष्टमी १६ मई से श्री महाप्रभु जी और श्री गुरुदेव जी के विग्रहों का वेदी

विराजमान समारोह प्रारम्भ हो गया है। इसमें श्री गुरुदेव गणेश अम्बिका नवग्रह कलश पर्वताभेद आदि का पूजन नित्य प्रति वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा विधि विधान से हो रहा है।

श्री दादा गुरु एवं श्री गुरुदेव जी के श्री विग्रहों को जलाधिवास, अन्नादिवास आदि कराया गया और श्री विग्रहों को ५१ कलशों के जल से स्नान कराकर बड़ी धूमधाम से वेदी में श्री महाप्रभुजी के एवं श्री गुरुदेव जी के जयकारों के बीच वेदी में विराजमान किया गया। वेदी विराजमान समारोह में दूर-दूर से आये श्रद्धालुओं के साथ-साथ स्थानीय गुरुभाई समाज एवं आसपास के नगरों से भी बड़ी मात्रा में लोग पधारे। श्री सिद्धगुफा से आचार्य श्री दास लाल जी महाराज कुरुक्षेत्र से योगिनी बहन उमाजी जिन्होंने अपने प्रवचनों में अनेक प्रभावशाली गुरु चरित्र सुनाये श्री योग साधन आश्रम से आचार्य पूरणचन्द जी महाराज, दिल्ली आश्रम से ब्र० वेदराम जी, ब्र० भाई राजेश जी, ब्र० भाई योगेन्द्र जी और ब्र० चि० प्रिय सुमित आदि भक्त जन उपस्थित रहे।

* * *

कविता

त्रिभुवन नाथ मिश्र, लखनऊ

प्रभुजी काहे धरी निठुराई
तुम्हारी कृपा कटाक्ष मात्र से धन्य है ग्राम सँवाई।
जाति पाँत का भेद न माना पूर्ण कृपा बरसाई।। प्रभु जी०।।
योग मार्ग की दीक्षा देने सिद्ध गुफा बनवाई।
लुप्त योग के बुझे दीप की जगमग ज्योति जगाई।। प्रभु जी०।।
योग निधि मार्तण्ड प्रभुजी, योग की धूनी रमाई।
शलमा, रामरती, मोहन पर पूर्ण कृपा बरसाई।। प्रभु जी०।।
शरणागत को शरण में लेकर योग ध्वजा फहराई।
गोपालानन्द को गुरु श्राप से क्षण में मुक्ति दिलाई।। प्रभु जी०।।
सूक्ष्म रूप से व्याप्त हो जग में पूर्ण ब्रह्म कहलाई।
तू है मुझमें मैं हूँ तुझ में फिर यह क्यों निठुराई।। प्रभुज जी०।।
मेरे भारी पाप देखकर मुझ से आँख चुराई।
करुण सागर, कृपा सिन्धु क्यों ऐसे नाम धराई।। प्रभु जी०।।
कब से आस लगाकर "त्रिभुवन" चरण पड़ा लिपटाई।
अबहूँ कृपा दृष्टि नहि कीन्ही जग में करूँ हँसाई।। प्रभु जी०।।

कर्मयोग

कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर)

प्रातः स्मरणीय श्री गुरुदेव भगवान साधकों को सतत कर्मयोग का उपदेश देते रहते थे। स्वयं भी आश्रम के कर्मों में लगे रहते थे। कर्मयोग से मेरा आशय किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं है। प्रत्युत सामान्य व्यावहारिक जीवन जीने की कला भी कर्मयोग की श्रेणी में आता है। इसीलिए **"योगः कर्मसु कौशलम"** अर्थात् कर्म की कुशलता ही योग है। हम अपने सामान्य व्यावहारिक जीवन में थोड़े से व्यवधान से घबरा जाते हैं। इसका मूल कारण हम अपने को ही किसी कार्य का कर्त्ता मान बैठते हैं। जबकि कार्य का नियामक कर्त्ता कोई और है। किसी भी प्रकार के कार्य का कर्ता व्यक्ति स्वयं नहीं हो सकता है। क्योंकि व्यक्ति ने इस सृष्टि में किसी कार्य का निर्धारण नहीं किया है। इस जगत में व्यक्ति के अपने स्वयं के व्यावहारिक कार्य चाहे वह ऐच्छिक हो अथवा अनैच्छिक, सब उस परमात्मा द्वारा निर्धारित है। हमको उसका अनुकरण करते हुए चलना है। जब व्यक्ति कार्य का कर्ता स्वयं को मान लेगा तो वह कार्य का अहंता हो जायेगा। उसके अन्दर उस विशेष कार्य के प्रति अहंकार पैदा हो जाना स्वाभाविक है।

साधक अग्रजो सावधान। यही अहंकार चित्त में विक्षेप पैदा करता है। जिससे व्यक्ति कर्त्तव्य च्युत होता है। सिद्ध गुफा संवाई आश्रम में गुरुदेव भगवान स्वयं सफाई, आरती, आसन, ध्यान, योग चिकित्सा, मन की एकाग्रता के साधन, हठ योग की क्रिया, सत्संग, भजन, यौगिक उपदेशों के साथ ही गो सेवा, आश्रम व्यवस्था, ब्रह्मचारी एवं साधक की व्यवस्था, योग प्रचार आदि के विभिन्न कार्यों को स्वयं देखते थे। यह देखकर साधक स्वयं समझ सकता है कि जीवन में कर्मयोग की कितनी महत्ता है। इतने सारे कार्यों के बाद भी गुरुदेव भगवान घूम घूम कर कठिन यात्रा करते रहते थे। यही वास्तव में सच्चा कर्मयोग था। जिसको गुरुदेव भगवान के जीवन चरित्र में देखा जा सकता है। गुरुदेव के इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक कर्मयोग रहे होंगे जिसको शायद साधक जानता भी नहीं होगा। मात्र वही साधक ही जान सका होगा जिसको वही कृपालु जताये होंगे। तुलसी दास जी ने इस संबंध में लिखा "सो जानहि जेहि देहि जनाई"।

कर्मयोग विविध प्रयोजनों का हेतु है। मनुष्य यदि निष्काम कर्म की ओर प्रवृत्त हो, तो व्यक्ति और समाज का पूरा कल्याण निश्चित है। व्यक्ति को अपने धर्माचरण के अनुसार कर्म

करना ही चाहिए। जैसे एक पिता का यह कर्म है कि अपनी सन्तान को अच्छी तालीम दे। जिससे वे समाज के लिए अच्छे नागरिक तैयार हों। इससे उस सन्तान में भी कर्म करने की प्रवृत्ति बनेगी। जिससे परिवार के भ्रष्ट होने की गुंजाइश नहीं रहेगी। वैसे इस कलिकाल में साधन और भजन भी कठिन ही जान पड़ता है। क्योंकि आज हर व्यक्ति उपदेष्टा बनना चाहता है। श्रोता बनकर सुनना उपयुक्त और संगत नहीं मानता है। समस्या यहीं जटिल और गूढ़ हो जाती है। वह ऐसा चाहता नहीं है। जबकि कर्म चित्त शुद्धि का साधन है। साधारण व्यक्ति लौकिक जीवन में जो कर्म करता है, उससे उसका लोक सधता है। लेकिन साधक अर्थात् कर्मयोगी जो अभिमंत्रित कर्म करता है। उससे समाज तथा देश का कल्याण होता है। कर्म से उसका चित्त शुद्ध होकर परमार्थ का भागी बनता है। महाभारत में तुलाधार वैश्य की कथा है। एक बार जाजलि नाम ब्राह्मण उसके पास ज्ञान प्राप्ति के लिये गये। उन्होंने तुलाधार से ज्ञान के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की। उसने कहा भैया मैं तो वैश्य ठहरा हमारे पास क्या मिलेगा ? मैं तो बस किसी सामान के तुलते समय तराजू की डाड़ देखता हूँ कि सीधा है कि नहीं यही दिन रात मेरा साधन है तथा यही ज्ञान भी। जाजलि को ज्ञान हो गया कि तुलाधार अपने कर्म के प्रति सदैव सजग है। क्योंकि उसे हर व्यक्ति के लिए तराजू की डाड़ को सीधा रखने के लिये समदृष्टि रखना पड़ता होगा। यह अभ्यास से ही सम्भव हो सकता है। अन्यथा ऐसी समदृष्टि कठिन है। वह इसी तौल के बहाने सत्य का दर्शन करता है। कर्मयोगी के कर्म को एक प्रकार का जाप ही समझना चाहिए। इससे उसके चित्त की शुद्धि होती है तथा निर्मल चित्त में सद्कर्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अपने विभिन्न कर्मों से कर्मयोगी अंत में ज्ञान प्राप्त करता है। इसी प्रकार कर्मयोग के अनेक उदाहरण महाभारत में हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा दी। जिससे अर्जुन का मोह नष्ट हो गया। उसे यह ज्ञान हो गया कि युद्ध वस्तुतः उसका धर्म हो गया है। अब यदि इस कर्म से मैं च्युत होता हूँ तो संसार मुझे कायर कहेगा।

अकीर्तिं चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।२।३३

अर्जुन के कर्म का परिणाम क्या हुआ ? भगवान ने स्पष्ट करते हुए कहा–"**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।।२।३७**

अर्थात् यदि युद्ध में मर गये तो स्वर्ग भोगोगे और जीत गये तो सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगोगे। यहीं कर्मफल का ज्ञाता परम तत्व योगेश्वर नारायण कृष्ण है जो सबके कर्मफल का ज्ञान है।

कर्मयोगी जो–जो कर्म या धंधे करता है। उसके कर्म से ही उसे भव्य ज्ञान प्राप्त होता है। वे कर्म उसके लिए कर्मशाला हो गयी। जैसे अर्जुन की कर्मशाला कुरुक्षेत्र, तुलाधार की कर्मशाला दुकान की तराजू की डाड़। इसी तरह सामान्य व्यक्ति भी कर्म के द्वारा कर्म करते हुए, व्यवहारिक जीवन के साथ–साथ आध्यात्मिक जीवन के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है आध्यात्म से अर्थागम भी आसान है। लेकिन उसमें किन्तु और परन्तु है। गुरुदेव भगवान अपने प्रवचनों में गोपालानन्द जी की आर्थिक स्थिति की चर्चा करते हुए, बताते थे कि– महाप्रभु ने कहा कि धन तो बहुत हो जायेगा लेकिन इस धन का परिणाम भी तो देख ले। गोपालानन्दजी महाप्रभु की कृपा से ध्यान में देखे कि वह सर्पयोनि में पड़कर उसकी रक्षा कर रहे हैं। वह घबरा गये। उन्होंने सोचा इतने बड़े शक्ति के सम्पर्क का परिणाम त्रियग् योनि। उन्होंने ऐसे धन को अस्वीकार कर दिया।

हमारे संतों ने भी कर्मयोग की सीढ़ी पर चढ़कर शिखर तक पहुँच गये। कबीर, रैदास, आदि महात्माओं के जीवन को पढ़ने से ज्ञात होता है। इसी प्रकार आधुनिक युग के विनोबा, गाँधी आदि ने भी अपने कर्मयोग से यश रूपी कीर्ति से आज भी संसार में अमर हो गये। सामान्य व्यक्ति भी कर्मयोग में प्रवृत्त होकर साधन के चरमोत्कर्ष पर आरूढ़ हो सकेगा। समाज में जब ऐसा व्यक्ति विचरण करेगा तो उस समाज का कल्याण होगा तथा समाज में सुख शान्ति रहेगी। चित्त शुद्ध रहेगा। मन में पवित्रता रहेगी। इसलिये आज युग के परिप्रेक्ष्य में इसकी आवश्यकता है।

* * *

'उपनिषदों तथा पातंजल योग सूत्र में समाधि की अवस्था प्राप्त करने अर्थात् मन को निरुद्ध अथवा सब प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शून्य करने की अनेक विधियाँ बतायी गयी हैं। परन्तु शुद्ध रूप से चित्त वृत्ति का अहंकार शून्य होकर ब्रह्माकार बन जाना ही सम्प्रज्ञात समाधि का स्वरूप है। यह स्थिति ध्यान के परिपक्व अभ्यास से सिद्ध होती है।

(मुक्तिकोपनिषद् २/५१)

श्री रामलाल प्रभवे नमः। श्री चन्द्रमोहन गुरवे नमः।

श्री गुरु पूर्णिमा एवं श्री रुद्र महायज्ञ

अपने आश्रम श्री सिद्धगुफा, सवाँई (आगरा) में गुरु पूर्णिमा का महोत्सव दिनांक २१ जुलाई २००५ को धूम-धाम से मनाया जा रहा है। साथ ही प्रतिवर्ष की भाँति श्री रुद्र महायज्ञ का आयोजन २३ जुलाई २००५ तदनुसार श्रावण कृष्ण द्वितीया से प्रारम्भ हो रहा है। यह यज्ञ २ अगस्त २००५ तक चलेगा। २ अगस्त को इसकी पूर्णाहुति होगी। यज्ञ के आचार्य पं० महादेव शास्त्री के प्रिय एवं योग्य शिष्य श्री बैकुण्ठ शर्मा होंगे।

सभी साधक भाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि यज्ञ-अनुष्ठान में सम्मिलित होकर ध्यान व जाप साधना को बढ़ाने के लिये इस स्वर्णिम अवसर का लाभ प्राप्त कर अपने को कृतार्थ करें।

जय गुरुदेव !

व्यवस्थापक
श्री सिद्धगुफा, सवाँई
आगरा

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008

July, 2005

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक सर्वकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा [illegible]

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

□□□□□□□

मनसि वचसि काये प्रेमपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

जिनका मन प्रेमपीयूष से परिप्लावित हो, जिनकी वाणी प्रेममयी मधुमयी हो, जिनका शरीर के अंग प्रत्यंगों की चेष्टाओं से प्रेम प्रकट होता हो और जो अपने उपकारों की बाढ़ से त्रिभुवन को बहाते से रहते हों तथा दूसरों के अणुमात्र गुण को पर्वत के समान बनाकर अपने हृदय में विकसित करते रहते हों ऐसे सन्त इस धराधाम पर कितने हैं ? यदि सौभाग्य से ऐसे संत मिल जायें और ढूँढने पर मिल ही जाते हैं, तो उनका संग निरन्तर करना चाहिए।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, शाहगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTPOINT-0562-2262261